पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके

आत्म-साधनाप्रेरक पत्र

૧૯૮૯

વાંકાનેર, આનંદનો દિવસ

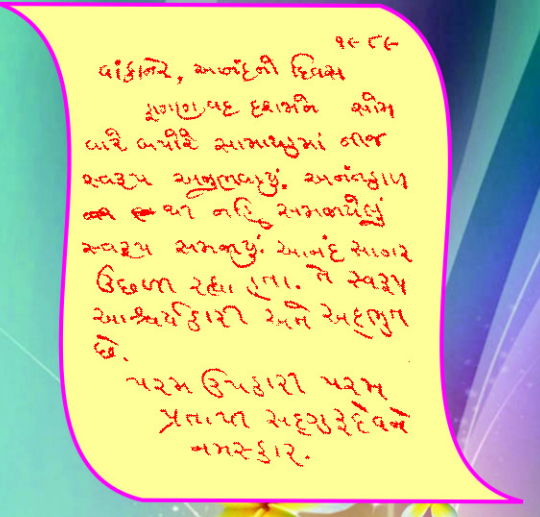

ફાગણ વદ દશમને સોમ
વારે બપોરે સામાયિકમાં નિજ
સ્વરૂપ અનુભવ્યું. અનંતકાળ
થી નહિ સમજાયેલું
સ્વરૂપ સમજ્યું. આનંદ સાગર
ઉછળી રહ્યા હતા. તે સ્વરૂપ
આશ્ચર્યકારી અને અદ્‌ભુત
છે.

પરમ ઉપકારી પરમ
પ્રતાપવંત સદ્‌ગુરુદેવને
નમસ્કાર.

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ-३६४२५०

શ્રી દિગમ્બર જૈન સ્વાધ્યાયમંદિર ટ્રસ્ટ, સોનગઢ - ૩૬૪૨૫૦

भगवानश्रीकुन्दकुन्द-कहानजैनशास्त्रमाला, पुष्प - २३४

ॐ

नमः सद्गुरुवे ।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके

आत्म-साधनाप्रेरक पत्र

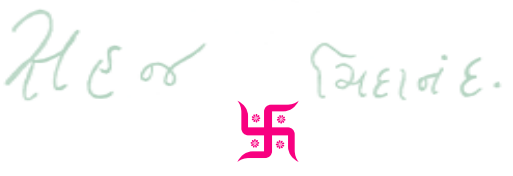

: प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,

सोनगढ़-364 250

website :www.kanjiswami.org

Email : contact@kanjiswami.org

Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust, Songadh - 364250

प्रथम आवृत्ति

प्रत : १५०० वि. सं. २०६८ ई.स. २०१२

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके

आत्म-साधनाप्रेरक पत्र (हिन्दी)के

स्थायी प्रकाशन पुरस्कर्ता

श्री सूर्यकीर्ति-देवेन्द्रकीर्ति प्रभावना मंडल

उदयपुर (राजस्थान)

इस पुस्तकका लागत मूल्य ७६/- होता है। अनेक मुमुक्षुओंकी आर्थिक सहायसे इस आवृत्तिकी किमत ४०/- होती है। उनमेंसे गंगाबेन रामजीभाई रूपशीभाई, पूज्य मातुश्री तथा पिताश्रीके स्मरणार्थ हस्ते रळियातबेन रायचंदभाई शाह, नाईरोबीकी ओरसे ५०% आर्थिक सहयोग प्राप्त होनेसे विक्रय-मूल्य २०/- रखा गया है।

मूल्य : रु. 20=00

मुद्रक :

कहान मुद्रणालय

सोनगढ-३६४२५० (सौराष्ट्र)

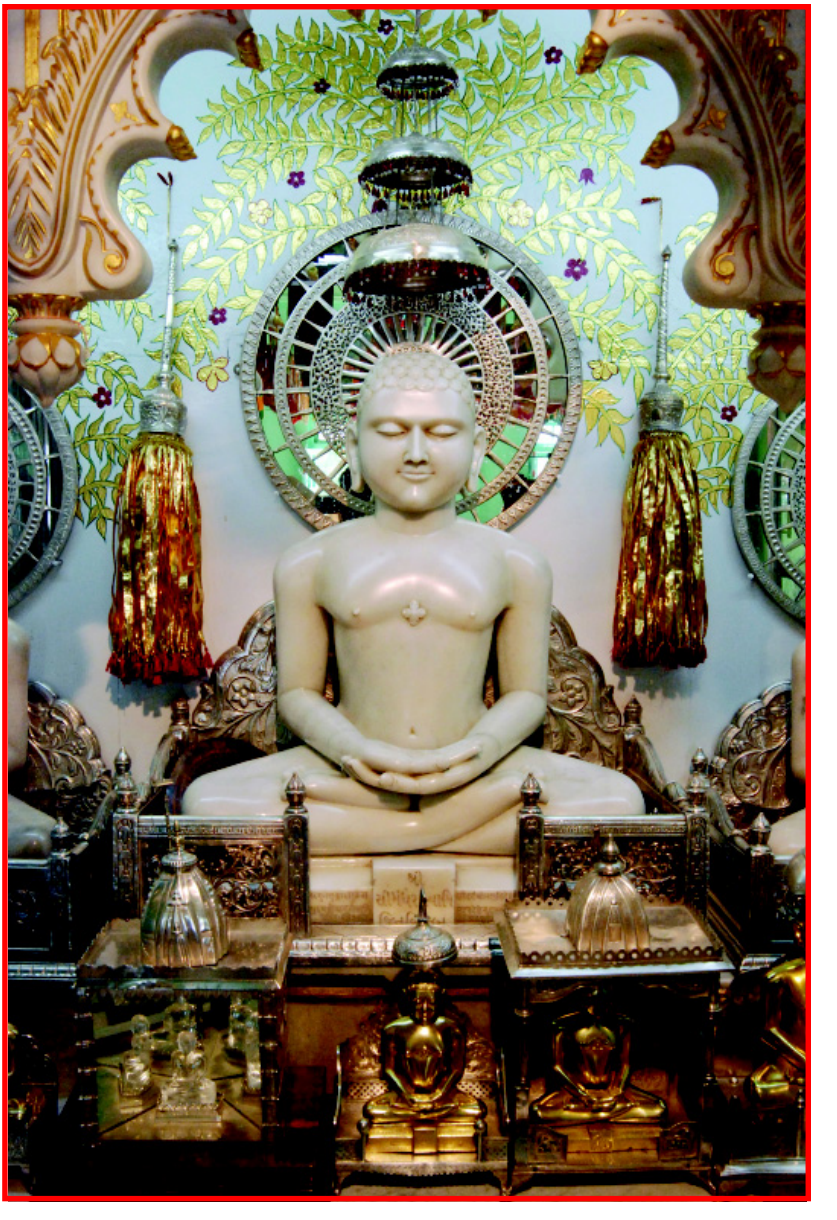

विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवान

प्रकाशकीय निवेदन

भगवान महावीर द्वारा प्रवाहित वीतराग शासनरूपी नौका विक्रमकी २०वीं सदीमें धीरे-धीरे योग्य कर्णधार बिना निजात्मानुभवविहीन शुष्क ज्ञान व बाह्य क्रियाकांड़के भँवरमें फँस गई थी। भगवान महावीरके पवित्र शासनको जैसे विक्रमकी प्रथम शताब्दीके भगवान कुंदकुंदाचार्य जैसे योग्य कर्णधारने सही दिशा प्रदान की थी। ऐसे ही उनके शासनको इस कालमें निजात्मानुभवी सत्पुरुष श्री कहानगुरुदेव जैसे यथार्थ कर्णधार द्वारा वापस सही दिशामें लाया गया।

ऐसे चैतन्यविहारी परमतारणहार पूज्य गुरुदेवश्रीके चरणोंमें अति दासत्वभावसे रहनेवाली, पूर्वभवके अपूर्व संस्कारोंसे सुसंस्कृत, बहिनश्री चंपाबहिनने मात्र १९वें वर्षमें आपके उपदेशोंके प्रतापसे निजात्मानुभवदशा प्राप्त कर ली। ऐसे धर्मात्मा पूज्य बहिनश्रीके पत्र, मुद्रा व सत्समागम सुषुप्त चेतनको जागृत करनेवाले तथा गिरती वृत्तिको स्थिर करनेवाले होनेसे यह 'आत्म-साधनाप्रेरक पत्र' नामक लघुकाय पुस्तक प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तकमें बहिनश्रीने अल्पवयमें सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेके पूर्व व पश्चात् लिखे पत्रोंका संकलन है। जिससे हमें आत्महितेच्छु जीवोंका जीवन ज्ञात हो कि 'उन्हें सम्यग्दर्शन होनेके पूर्व कैसी जिज्ञासा, तड़प, खटक और उसकी तीखी तमन्ना होती है? सम्यग्दर्शनके कालमें कैसा उग्र पुरुषार्थ होता है? सम्यग्दर्शनमें आत्मानुभवदशा कैसी होती है?'—इन सब बातोंका

प्रकाश जिसमें है ऐसा पत्रव्यवहार यहाँ दिया गया हैं। यह पत्र 'बहिनश्रीकी साधना वाणी' (गुजराती)पुस्तकमें प्रकाशित हो चुके है। वे ही पत्र हिन्दीमें प्रथम बार स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं।

इस पुस्तकमें दिया गया पूज्य बहिनश्रीका जीवन परिचय, 'साधना और वाणी', 'बहिनश्रीके वचनामृत' तथा प्राप्त जीवन वृत्तांतके आधारसे संकलित किया गया है। प्रश्नोत्तर, हस्ताक्षर व टिप्पणी पूर्वमें गुजराती 'साधना और वाणी' पुस्तकमें प्रकाशित हो चुके हैं।

उन्हीं पत्रादिका यह सचित्र रंगीन व लघुकाय पुस्तक हो, तो मुमुक्षुओंको आत्मार्थप्रेरक बने–ऐसा ध्यानमें रखकर इस पुस्तकका प्रकाशन किया जा रहा है।

आशा है कि ये पत्रव्यवहार आदि मुमुक्षुजीवोंको अपना जीवन आत्मार्थमय बनाने हेतु अवश्य लाभान्वित करेंगे। इस पुस्तकके सुंदर प्रकाशनमें कहान मुद्रणालयकी मेहनत सराहनीय है।

पूज्य बहिनश्रीका ९९वाँ
जन्म-जयंती महोत्सव
दि. ३-८-२०१२

साहित्यप्रकाशनसमिति
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ (सौराष्ट्र)

ऐसे कालमें परम पूज्य गुरुदेवश्रीने आत्मा प्राप्त किया इसलिये परम पूज्य गुरुदेव एक 'अचंभा' हैं। इस काल दुष्करमें दुष्कर प्राप्त किया; स्वयं अंतरसे मार्ग प्राप्त किया और दूसरोंको मार्ग बतलाया। उनकी महिमा आज तो गायी जा रही है परन्तु हजारों वर्ष तक भी गायी जायगी।

*

गुरुदेवको मानों तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। वाणीका प्रभाव ऐसा है कि हजारों जीव समझ जाते हैं। तीर्थंकरकी वाणी जैसा योग है। वाणी जोरदार है। चाहे जितनी बार सुनने पर भी अरुचि नहीं आती। स्वयं इतनी सरसतासे बोलते हैं कि जिससे सुननेवालेका रस भी जमा रहता है, रसभरपूर वाणी है।

—पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

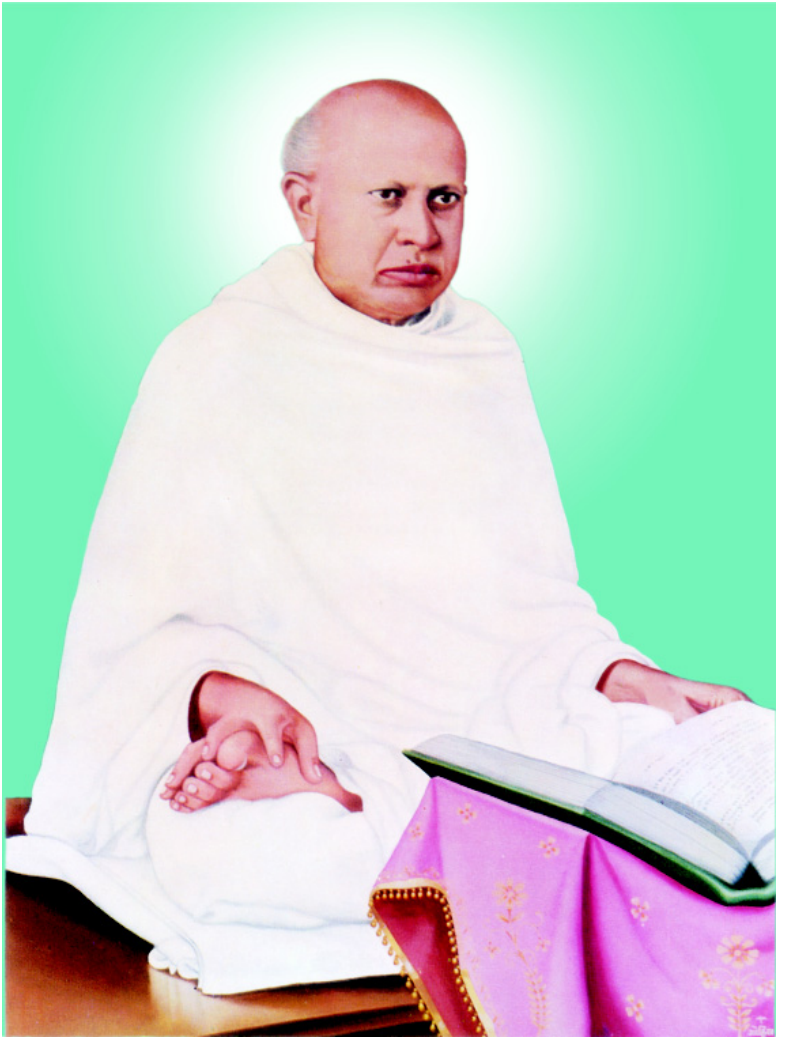

परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन

सीमंधरगणधर संतना तमे सत्संगी;
अम पामर तारण काज पधार्या करुणांगी।
तुज ज्ञान ध्याननो रंग अम आदर्श रहो;
हो शिवपद तक तुज संग, माता हाथ ग्रहो।

॥ श्री वीतरागाय नमः॥

पूज्य बहिनश्रीका जीवन परिचय

इस भारतवर्षकी पुण्यभूमिमें अवतार लेकर जिन महापुरुषने शासननायक भगवान श्री महावीरस्वामी द्वारा प्ररूपित (प्रवाहित) एवं तदाम्नायानुवर्ती भगत्कुंदकुंदाचार्यदेव द्वारा समयसारादि परमागमोंमें सुसंचित शुद्धात्मद्रव्यप्रधान अध्यात्मतत्त्वामृतका स्वयं पान करके विक्रमकी यह बीसवीं-इक्कीसवीं शताब्दीमें आत्मसाधनाके पावन पंथका पुनः समुद्योत किया है, उन परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीकी अनन्य भक्त तथा उनकी प्रमुख शिष्या पूज्य बहिनश्री चंपाबेनका पवित्र जन्म वि.सं. 1970 (ई.स. 1914) के भादों कृष्णा द्वितीया, शुक्रवारके शुभ दिन सौराष्ट्रके वढ़वाण नगरमें हुआ था। उनके पिताका नाम जेठालालभाई एवं माताका नाम तेजबा था। उनको बाल्यवयसे ही माता-पिताके धार्मिक संस्कार प्राप्त हुए थे। वे प्रथमसे ही प्रकृतिसे सौम्य, नरम, सौजन्यपूर्ण, लज्जाशील, वैरागी एवं मितभाषी थीं। साथसाथ वे अत्यंत बुद्धिप्रतिभायुक्त होनेसे शालाकी शिक्षामें प्रायः प्रथम नंबर रखती थीं।

पूज्य बहिनश्रीकी उम्र जब साढ़े तीन सालकी थी तब ही उनके मातुश्री तेजबाका स्वर्गवास हो गया, अतः वे करांचीमें बड़ी बहिन समरतबेनके पास क़रीबन दस-ग्यारह साल रहीं। शालाका अभ्यास उन्होंने करांचीमें ही किया। उस दौरान उनके पिताजी जेठालालभाई, ज्येष्ठ बंधु व्रजलालभाई तथा हिम्मतभाई वढवाणमें रहे।

बहिनश्रीको लघुवयसे ही गुणवान व्यक्तियोंके प्रति लगाव था। उसमें भी सतीओंके प्रति तो उनके अंतरमें विशेष प्रेम था। वे सतीओंके

जीवन चरित्र पढ़तीं तथा सतीयोंके चरित्र संबंधी रास-गरबे भी शालाके मैदानमें गवातीं और अन्य बालाएं भी समूहमें वे गाती थीं। उसमें एकबार सतीमंडलकी पुस्तक पुरस्कारके तौर पर मिली थी। अन्य भी नैतिक एवं सदाचरणके पुस्तक वे पढ़ती थीं। अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढनेके प्रति उनको पहलेसे ही लगाव था। उन्होंने धार्मिक अभ्यास–घरपर ही पढ़कर या तो किसी बहिनके साथ सामायिक–प्रतिक्रमण आदि करती थीं—उस दौरान किया था। कभी-कभी बाहरसे पधारे हुए कोई विद्वान व्याख्यान पढ़े तो वह उपदेश सुनने भी जाती थीं तथा घर पर ही दोपहरको सामायिक और रात्रिको प्रतिक्रमण करती थीं। उन्होंने सामायिक एवं प्रतिक्रमणके पाठ कंठस्थ किये थे। विशेषमें नव तत्त्व, छ कायके बोल, दंडक, गति-आगति, गुणस्थान ये सब यथाशक्ति विचार-पूर्वक कंठस्थ किया था। वहाँ करांचीमें उनको पंडित 'लालन'का एक पुस्तक मिला था। उसमें ऐसा आता था कि 'आँख बंद करो, कान बंद करो, अंदर जो विचारक तत्त्व है 'वह आत्मा है' यह बात उन्हें पसंद आयी थीं। इस प्रकार आत्मा समझनेकी धार्मिक जिज्ञासा पहलेसे ही थी।

लघुवयसे ही उनको अंतरमें ऐसा लगता था कि ऐसा मनुष्य भव तो कभी कभी ही मिलता है, अतः इस अनमोल मनुष्य भवका उपयोग तो मोक्ष प्राप्त करनेके लिए ही कर लेना चाहिए।

उसके बाद करीबन चौदह सालकी आयुमें वे वढ़वाण आयीं। तत्पश्चात् ज्यादातर समय उनका वहाँ ही निवास रहा। कभी-कभी ज्येष्ठ बंधु वजुभाईके घर वांकानेर भी जाती थीं। उनका चित्त वैराग्यसे भीगा हुआ तो था ही, ऐसेमें उनकी धर्मभावनाको पोषण मिले एवं दिशा मिले ऐसी एक प्रमुख घटना घटी। वि.सं. 1985 (ई.स. 1929)में प्रथमबार उनको सौराष्ट्रके लोकप्रसिद्ध आत्मानुभवी संत पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके दर्शन तथा उनके प्रवचन सुननेका उत्तम लाभ प्राप्त हुआ। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंमें आत्महित पोषक तत्त्वकी बहुतसी बातें सुननेको मिली। उनके द्वारा मोक्षमार्गकी जो यथार्थ निरुपण, तत्त्वज्ञानकी

सूक्ष्म बातें, सम्यग्दर्शनका महात्म्य, आत्माका स्वभाव, कर्म और आत्माका स्वतंत्र परिणमन आदि जैनाभिहित तत्त्वोंका जो निरूपण होता था उसके बारेमें वे अपने ज्येष्ठ बंधु श्री हिम्मतभाईके साथ रसपूर्वक वार्तालाप करती थीं। श्री हिम्मतभाई तत्त्वकी, वैराग्यकी, या सत्पुरुषके प्रति भक्ति की जो जो बातें करते थे वे उन्हें बहुत पसंद आती थी। शुरूमें तो वे बातें बहिनश्रीको काफ़ी मुश्किल लगती थी और अंतरमें ऐसा लगता था कि ये सब कैसे समझमें आयेगा? लेकिन बादमें तो उन्होंने सब त्वरासे ग्रहण कर लिया और पूज्य गुरुदेवश्री प्ररूपित तत्त्वज्ञान अन्दरमें भावसे स्वयं समझ लिया।

श्रीमद् राजचंद्र पुस्तक बहिनश्री अकेली भी पढ़ती तथा वड़ील बंधु हिम्मतभाईके साथ बैठकर भी पढ़ती थीं। वे दोनों उसमें प्ररूपित धर्मबोधके बारेमें चर्चा भी करते थे। उसमें जो विचार कहे गए थे उस विषय पर विशेष विचार करते थे। उन्हें मोक्षमार्गप्रकाशक नामक दिगंबर जैन ग्रंथके दूसरे अधिकारके भाषांतर समान एक पुस्तक 'कर्म और आत्माका संयोग' प्राप्त हुआ था। उस पुस्तकमें तर्कसंगत एवं सुंदर ढंगसे जो सिद्धांत समझाए गए थे वे इन भाई-बहिनको बहुत पसंद आए थे।

एकबार पूज्य बहिनश्रीके साथ चर्चा चल रही थी तब श्री हिम्मतभाईने कहा कि ''क्रोध आत्माका स्वभाव नहीं है; ये कैसे निर्णय हो सके?' तो बहिनश्रीने तुरंत कहा कि 'क्रोध जो आत्माका स्वभाव हो तो उससे ज्ञानको पुष्टि मिलनी चाहिए। स्वभाव और स्वभाववान एक दूसरेका घात नहीं करते अपितु पुष्ट करते हैं।'

तत्पश्चात् बहिनश्रीने परमागमके एक अति महत्त्वपूर्ण सिद्धांतके प्रति अपना दृढ़ प्रतीतिभाव जोरपूर्वक प्रकट किया कि ''जीव जब अशुद्धि करता है तब भी उसको सामर्थ्य अपेक्षासे शुद्धि बनी रहती है'' ऐसे बहिनश्रीको बहुतसे आध्यात्मिक तथ्य सहजरूपसे अंतरमें यथार्थ लगते थे।

यद्यपि बहिनश्री आजन्म वैरागी थीं तो भी उनको मोक्षमार्गके पुरुषार्थकी सच्ची विधि तो परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीके परम प्रतापसे ही प्राप्त हुई। बहिनश्रीके अंतरमें तारणहार पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रति असीम भक्ति थी। गुरुदेवश्रीके उपकारोंका वर्णन करते समय वे गद्‌गदित हो जाती थीं। ''मैं तो पामर हूँ, सभी पूज्य गुरुदेवश्रीका ही है ऐसा उनके आत्माका प्रदेश-प्रदेश पुकारता था।''

बहिनश्रीको पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंके श्रवणके प्रतापसे समकित प्राप्त होनेके दो वर्ष पूर्व ही अंदरसे ज़ोर आने लगा की मुझे समकित तो प्राप्त करना ही है, इस भवमें समकित प्राप्त न हुआ तो इस मनुष्यपनेकी क्या सार्थकता? समकित होगा ही....समकित प्राप्त करना ही है। अब तो समकितके लिए तीव्र पुरुषार्थ करना है।

इस प्रकारसे उन्होंने उग्र पुरुषार्थ करके 19वें वर्षकी युवा वयमें वि.सं. 1989 (ई.स. 1933)के वैशाख कृष्णा दसवींके मंगल दिन वांकानेरमें निर्विकल्प समकित प्राप्त किया। संसार परिभ्रमणका अंत आया। अंतरमें अनंतकालिन स्थायी-शाश्वती शांति प्राप्त हुई।

देखा निज भगवानको, चेतनघन अविकार,
आनंदसागर उछले, अहो भवभ्रमण निस्तार रे....
मंगल द्वार खुले रे.....

पूज्य बहिनश्रीने अपने सम्यक्त्व प्राप्तिकी बात अपने ज्येष्ठ बंधु श्री हिम्मतभाईको पिताश्रीने सुरत लिखे हुए पोस्टकार्डमें मात्र एक पंक्ति लिखकर दर्शाया कि **''जैन दर्शन सत्य है, ऐसा मैंने तो जाना है''** इतने मात्रसे विचक्षण ज्येष्ठ बंधु समझ गए कि **''क्या बहिनश्रीको समकित हुआ है?''** यह बात उन्होंने पत्र द्वारा पृच्छा करने पर पूज्य बहिनश्रीने अत्यंत नम्र शब्दोंमें लिखा की **''इस आत्माको परिभ्रमणका किनारा आ गया है।''**

सम्यक्‌दर्शन प्राप्तिकी आनंदकारी बात पूज्य गुरुदेवश्रीको बताने वे

श्री पुरुषोत्तमदास कामदार (दासभाई) के साथ राजकोटमें सदर के उपाश्रय गई और नम्रतासे अत्यंत विनयपूर्वक कहा कि ''साहब! आपकी कृपासे मुझे आत्मसाक्षात्कार हुआ है। तत्पश्चात पूज्य गुरुदेवश्रीने पूज्य बहिनश्रीको पूछा कि ''बहिन आत्मसाक्षात्कार होनेसे आपको क्या लगा?'' बहिनश्रीने कहा ''आत्मा अकर्ता हो गया, कर्तृत्व छूट गया है और ज्ञाता हो गया है'' मात्र स्वल्प प्रश्नोंके उत्तरोंसे पूरा संतोष हो जानेसे गुरुदेवश्री शांत होकर बोले : ''आत्मा कहाँ स्त्री या पुरुष है? आत्मा कहाँ बालक या वृद्ध है?

वि.सं. 1989 (ई.स. 1933)से प्रति वर्ष पूज्य गुरुदेवश्रीका जिस गाँवमें चातुर्मास होता था उसी गाँवमें पूज्य बहिनश्रीने पूज्यश्रीके प्रवचनोंका लाभ प्राप्त करने हेतु चारमासके लिए वहीं रहना शुरू किया।

पूज्य गुरुदेवश्रीने वि.सं. 1991 (ई.स. 1935)में सोनगढ गाँवमें 'स्टार ऑफ इन्डिया' नामक मकानमें सांप्रदायिक परिवर्तन किया। अतः पूज्य बहिनश्रीने भी कुछ ही समयमें सोनगढको ही अपना निवासस्थान बनाया।

वि.सं. 1993 (ई.स. 1937)के वैशाख कृष्णा अष्टमीके दिन पूज्य बहिनश्रीके जीवनमें एक अभूतपूर्व घटना घटी। उस मंगल दिनको सुबह करीब दस बजे उनको **आत्मानुभवमेंसे बहार आते पूर्वभवोंका जातिस्मृतिज्ञान हुआ।** उस ज्ञानमें उनको महाविदेहक्षेत्रके विद्यमान प्रथम तीर्थंकर भगवान सीमंधरनाथका स्मरण आया। उनको स्मरणमें ऐसा भी आया कि जब भगवान कुंदकुंदाचार्यदेव महाविदेहमें सीमंधर भगवानके समवसरणमें पधारे थे तब उनका आत्मा श्रेष्ठी पुत्रके रूपमें एवं पूज्य गुरुदेवश्रीका आत्मा राजकुमारके रूपमें वहाँ उपस्थित थे; तथा स्मरणमें ऐसा भी आया की ''भगवानकी दिव्यध्वनिमें ऐसा आया है कि **'यह राजकुमार भाविकालमें धातकीखंडके विदेहक्षेत्रमें सूर्यकीर्ति नामक तीर्थंकर होंगे। तथा इस भव पश्चात् जम्बूद्वीपस्थ भरतक्षेत्रमें जन्म लेकर वे वहाँ कुंदकुंदाचार्यके तीर्थका प्रवर्तन करेंगे।'**

इस बातकी जानकारी पूज्य गुरुदेवश्रीको जब हुई तो संप्रदायमें उनको जो बातें अंतरमें आती थी की **''मैं राजकुमार हूँ तथा जरीवाले मखमलके वस्त्र पहने हैं, तथा मैं तीर्थंकर हूँ''** आदि बातोंका समर्थन मिल गया। पूज्य बहिनश्रीको यह बातें पहले मालूम नहीं थी।

इस प्रकारसे पूज्य बहिनश्रीको जातिस्मृतिज्ञानमें वृद्धि होनेसे उनको पूर्वके चार भव तथा भगवानकी वाणीमें सुने हुए पूज्य गुरुदेवश्री एवं स्वयंके चार भवोंका भी स्मरण आया। ऐसे पूज्य गुरुदेवश्रीके शब्दोंमें कहा जाय तो ''बेनको असंख्य अबज वर्षोंका जातिस्मरणज्ञान है'' उसमें पूज्य बहिनश्रीने यह भी जाना कि **'जब पूज्य गुरुदेवश्री भविष्यमें सूर्यकीर्ति तीर्थंकर होंगे तब वे ही उनके देवेन्द्रकीर्ति नामक प्रमुख गणधर होंगे।**

स्वयंको असंख्य अबज वर्षोंका जातिस्मरणज्ञान होने पर भी अपने बंधुओंको भी बात नहीं कही थी। यह ज्ञान पूज्य गुरुदेवश्री संबंधित होनेसे पूज्य गुरुदेवश्रीको भी सात मास और बारह दिन पश्चात् ही कही। अहा! क्या उनकी गंभीरता एवं निर्मानता!

उनका समग्र जीवन ज्ञानध्यानमय एवं आत्मलक्ष्यी था। जिनागमके चारों अनुयोगोंका उनका अभ्यास तलस्पर्शी था। स्मरणशक्ति ऐसी कि एक बार पढें तो कभी भूलती ही नहीं। पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंका श्रवण, ग्रहण, धारण भी बहुत एकाग्रता तथा मनन, चिंतनपूर्वक करती थीं। गुरुभक्तिसे प्रेरित होकर पूज्य गुरुदेवश्रीके भाव यथावत रह सके इस हेतुसे पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंका आलेखन करनेकी भावना उनके अंतरमें वर्तती थी। अतः उसको कार्यान्वित भी कर ली।

निरंतर वृद्धिगत् परिणतिको प्राप्त बहिनश्री तो अपनी साधनामें आगे बढ रही थीं। आप सहजरूपसे फ़रमाती कि उनको तो तीन काम है (1) साधनाकी उग्रतामें निर्विकल्पदशा (2) श्रुतका चिंतवन, पूज्य गुरुदेवश्रीके भवांतर संबंधी विचार, सीमंधर भगवानके दर्शन, (3) उनमेंसे

बाहर आये तो देव-शास्त्र-गुरु संबंधी विचार। आत्मा तो हस्तामलकवत् दीखता है।

सोनगढ़में भक्तोंके द्वारा पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचन, स्वाध्याय, ज्ञान-ध्यान एवं आवासके लिए 'जैन स्वाध्यायमंदिर' नामक नवीन आयतनका निर्माण हुआ। वि.सं. 1994(ई.स. 1938)के ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमीके पवित्र दिनको उसका मंगल उद्घाटन हुआ। उसमें पूज्य गुरुदेवश्रीके आदेशसे पूज्य बहिनश्रीके करकमलोंसे समयसार परमागमकी स्थापना की गई। इस प्रसंग पर पूज्य गुरुदेवश्रीने प्रथम प्रवचनमें ही **"बेन (चंपाबेन) तो भगवती स्वरूप है"** ऐसे अंतरके अहोभावपूर्ण उनको बिरदाया।

तत्पश्चात् सोनगढ़में सर्वप्रथम दिगंबर जिनालयका निर्माण हुआ, उसमें विदेहीनाथ सीमंधर भगवान, पद्मप्रभ भगवान एवं शांतिनाथ भगवानकी मंगल प्रतिष्ठा हुई। इस मंदिरके निर्माण तथा जिनबिम्बोंको पसंद करने और लानेमें पूज्य बहिनश्रीने अत्यंत भक्तिभावपूर्वक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उनके जातिस्मरणज्ञान अनुसार समवसरणमंदिर, एवं मानस्थंभका सोनगढ़में निर्माण हुआ। आपने अपनी नजरोंसे देखे हुए कुंदकुंदाचार्यका भाववाही-हूबहू चित्रपट तैयार करवाया। विविध प्रसंग पर नये-नये भक्तिगीतोंकी रचना की तथा अन्य भक्तिगीतोंके संकलनमें मार्गदर्शन करके हररोज जिनमंदिरमें भाववाही भक्ति करानेकी प्रणालिका स्थापित की गई। आपने स्वयं तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा की तथा पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ भी भाववाही यात्रायें की, उन यात्राओंको अपने भक्तिगीतोंसे रसभरपूर बना देती थीं। आपके ज्येष्ठ बंधु गहरे आदर्श आत्मार्थी पंडितरत्न हिम्मतभाईको भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव रचित समयसारादि पंचपरमागमोंकी मूल गाथाओंके हरिगीत एवं उन ग्रंथोंकी आचार्यदेवोंके द्वारा रचित संस्कृत टीकाओंका गुर्जर भाषामें अनुवाद करनेकी प्रेरणा देती थी। इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्रीके द्वारा हुई अभूतपूर्व धर्मप्रभावनामें आपने क़ीमती योगदान दिया।

पूज्य बहिनश्रीने पूज्य गुरुदेवश्रीकी निश्रामें सोनगढ़में ही निवास करना पसंद किया। वि.सं. 2008 (ई.स. 1942) वसंतपंचमीके दिन पूज्य बहिनश्री, बेन शांताबेन तथा ब्र. बहिनोंके निवासके लिए सोनगढमें ब्रह्मचर्याश्रमका निर्माण कराके उसका उद्घाटन किया गया। उस अवसर पर पूज्य गुरुदेवश्रीके श्रीमुखसे **''बोधि समाधिको प्राप्त करो''** ऐसे मंगल आशीर्वचन निकले। जिनमंदिरके परिसरकी अत्यंत नजदीक ब्रह्मचर्याश्रम होनेसे पूज्य बहिनश्री फरमाती थीं, ''जैसे भगवानके आंगनमें रहने आ गये''।

वि.सं. 2030 (ई.स.1974)में सुवर्णपुरीमें पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रभावनायोगसे परमागममंदिरका निर्माण हुआ। उसके 'बारसाख'का मुहूर्त पूज्य बहिनश्रीके करकमलोंसे किया गया। इस मंदिरमें शासननायक भगवान महावीरस्वामीकी सुंदर प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई गई। भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेव विरचित पंच परमागमोंको टीका सहित विश्वमें प्रथम बार संगमरमरकी शिलापटों पर उत्कीर्ण करवाया गया। इस मंदिरमें पूज्य बहिनश्रीने भविष्यकी चिंता किए बिना अपनी समग्र संपत्ति समर्पित कर दी। ऐसी थी उनकी उदारता!

पूज्य बहिनश्री तो अत्यंत भक्तिभावसे पूज्य गुरुदेवश्रीके जन्मजयंतीके महोत्सवोंमें स्वयं शामिल होती थी। लेकिन भक्तजनोंकी भावना एवं पूज्य गुरुदेवश्रीके आदेशसे पूज्य बहिनश्रीके जन्मोत्सव तथा सम्यक्त्वजयंती महोत्सव सोनगढ़में मनाना शरू हुआ जो आज भी अत्यंत भव्य महोत्सवके रूपमें सोनगढ़में मनाये जाते हैं।

पूज्य बहिनश्रीका ब्रह्मचर्याश्रममें स्थायी निवास होनेसे ब्रह्मचारी बहेनोंको उनके वात्सल्यका एवं नित्य सत्संगका कल्याणकारी लाभ प्राप्त हुआ। आश्रममें रात्रिसभामें पूज्य बहिनश्रीका, मात्र बहिनोंके लिए शास्त्र-स्वाध्याय होता था। अहा! कैसी उनकी वैराग्यरसझरती स्वानुभवभीगी अमृतवाणी! क्या उनकी गहराई! क्या उनकी तात्त्विक गंभीरता! मीठी

मधुर भाषामें सीमंधर भगवानके संदेश सुनाती थीं। बहुत ही कम शब्दोंमें, सरल भाषामें गंभीर सिद्धान्त कहनेकी उनकी शक्ति अजब प्रकारकी थी। उनके श्रीमुखसे, अनुभवधारामेंसे बहते आत्मार्थपोषक वचन जो कुछ ब्रह्मचारी बहिनोंने अपने आत्महितार्थ संग्रहित किये वे संपादन सह, संकलित व लिपिबद्ध होकर ''बहिनश्रीके वचनामृत'' रूपमें पुस्तकाकार उनके 64वें जन्मदिवस पर प्रकाशित किए गये इन वचनोंका संपादन सह संकलन पंडितरत्न श्री हिम्मतभाई जे. शाह द्वारा किया गया। पूज्य गुरुदेवश्रीने यह पुस्तक अनेकबार पढ़ी, और इसे पढ़कर वे आश्चर्यचकित हो गये, और उसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की। वे सहजभावसे बोले कि ''यह तो बारह अंगका मक्खन (नवनीत) है। पूज्य गुरुदेवश्रीने श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्टके तत्कालीन प्रमुख श्री रामजीभाईको पुस्तक एक लाख प्रत छपवानेका आदेश दिया। जो पूज्य गुरुदेवश्रीके जीवनका सर्व प्रथम व एकमात्र आदेश रहा। श्री रामजीभाईने भी अत्यंत भक्तिपूर्वक इस बातका पालन किया। पूज्य गुरुदेवश्री बहुत मुमुक्षुओंको यह पुस्तक भेटस्वरूपमें देते थे तथा सभीको इसका स्वाध्याय करनेकी प्रेरणा भी देते थे। पुनश्च भक्तोंकी मांगसे पूज्यश्रीने इस पुस्तक पर भाववाही प्रवचन किए। इन प्रवचनोंको उनके अंतेवासी बा.ब्र. श्री चंदुभाई झोबालियाने कुशलतापूर्वक संकलित किआ। जो चार भागमें गुजराती तथा हिन्दी भाषामें प्रकाशित किये गए है।

पूज्य बहिनश्रीके श्रीमुखसे प्रवाहित हुई प्रवचनधारामेंसे संग्रहीत किये गए अमृतबिंदुओंसे संकलित इस लघुसंग्रहकी तात्त्विक वस्तु अति उच्च कोटिकी है। उसमें आत्मार्थप्रेरक अनेक विषय आ गए हैं। 'हे जीव तुझे कही भी अच्छा न लगे तो आत्मामें (लगन लगा), आत्माकी लगन लगे तो जरूर मार्ग प्राप्त हो, ज्ञानकी सहज परिणति, अशरण संसारमें मात्र देव-गुरु-धर्मका शरण; स्वभावकी प्राप्तिके लिए यथार्थ मुक्तिका स्वरूप, मोक्षमार्गमें प्रारंभसे लेकर पूर्णता तक पुरुषार्थका ही महत्त्व; द्रव्यदृष्टि एवं स्वानुभूतिका स्वरूप तथा उसकी चमत्कारिक महिमा,

गुरुभक्ति एवं पूज्य गुरुदेवश्रीकी भवान्तकारिणी वाणीकी अद्‌भुत महिमा, मुनिदशाका अंतरंग स्वरूप एवं उसकी महिमा, निर्विकल्प दशा, ध्यानका स्वरूप, केवलज्ञानकी महिमा, शुद्धाशुद्ध समस्त पर्यायोंसे विरहित सामान्य द्रव्यस्वभाव वह दृष्टिका विषय, अखंड परसे दृष्टि छूट जाए तो साधकपना ही न रहे, शुद्ध, शाश्वत चैतन्यतत्त्वके आश्रयरूप स्ववशपनेसे शाश्वत सुख प्रकट होता है—आदि अनेक विषयोंका सादी, असरकारक एवं सचोट भाषामें सुंदर निरुपण हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्रीके शब्दोंमें कहा जाए तो 'बेन तो भगवती स्वरूप है', 'आराधनाकी देवी है', 'उनको निवृत्ति है', 'इस युगमें बेन(चंपाबेन) जैसे महान व्यक्तित्वका होना यह तो बहिनोंका परम सौभाग्य है' 'उनका यह पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है, ''पूरे समयसारका सार आ गया है'', ''यह पुस्तक पढ़कर विरोधी भी मध्यस्थ हो जायेगा'', ''जगतके लिए लाभका हेतु है''।

इस वचनामृत पुस्तकसे पूज्य बहिनश्रीकी समग्र भारतवर्षमें बहुत प्रसिद्धि हुई। भक्तोंके द्वारा पूज्यश्रीके सामने ही उन्हें हीरोंसे बधाया जाने लगा तथा जगह-जगहसे उनको अभिनंदन पत्र समर्पित किए गए। उनकी जन्मजयंतीके समय पूज्य गुरुदेवश्रीने अत्यंत भावपूर्वक कहा कि ''धर्मकी शोभा चली आ रही है''।

भक्तोंकी भावनासे पूज्य गुरुदेवश्रीने 'बहिनश्रीके वचनामृत' पुस्तकके लिए एक स्वतंत्र आयतन बनाकर उसमें संगेमरमरके शिलापटों पर वचनामृत उत्कीर्ण करानेकी सम्मति दी तथा पूज्य गुरुदेवश्रीकी मंगल उपस्थितिमें उनके करकमलोंसे शिलाओं पर स्वस्तिक कराकर उस भवनका शिलान्यास किया। बादमें इस भवनको पंचमेरु-नंदीश्वर जिनालयके रूपमें विस्तृत किया गया एवं पूज्य बहिनश्रीकी आज्ञासे, जिनको उन्होंने स्वयं देख लिये थे ऐसे, 'गुरुदेवश्रीके वचनामृत' भी उत्कीर्ण कराये गये।

परमकृपालु पूज्य गुरुदेवश्री तो तारणहार थे ही लेकिन उनकी

अनुपस्थितिमें उनके पथ पर चलनेकी कुछ योग्यता हमारे अंतरमें प्रकट हुई हो तो यह सब पूज्य बहिनश्रीका ही असीम उपकार है। पूज्य गुरुदेवश्रीकी अचानक आ गई अनुपस्थितिसे समग्र मुमुक्षु समाज जब कि हतप्रभ हो गया तब ऐसी स्थितिमें पूज्य बहिनश्रीने जैसे कि 'पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात् उपस्थित हो उस प्रकारसे आराधना करनेका' सुंदर मार्गदर्शन किया। तदुपरांत पूज्य गुरुदेवश्रीके वचनोंमें रहे हुए गंभीर एवं गहन भावोंको तत्त्वचर्चाओंके माध्यमसे मुमुक्षुओंको अत्यंत सरलरूपसे समझाया। नूतन निर्मापित पंचमेरु–नंदीश्वर जिनालयमें धातकी खंडके भावी तीर्थंकरकी स्थापनामें भक्तिपूर्ण अनुमोदन करके भक्तोंको जैसे पूज्य गुरुदेवश्रीके पुनः तीर्थंकरूपमें साक्षात् दर्शन कराए। ऐसे अनेक प्रकारसे पूज्य बहिनश्रीने पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवर्तित धर्मशासनका संवर्धन एवं संरक्षण किया। ऐसे उभय उपकारी आत्मज्ञानी संतोंकी जीवनकलासे सौराष्ट्रका जैन इतिहास उज्वल बना है।

परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीके चरणकमलमें कोटि-कोटि वंदना! एवं प्रत्यक्ष उपकारी प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको कोटि कोटि वंदना!

तुज ज्ञान ध्याननो रंग अम आदर्श रहो;
हो शिवपद तक तुझ संग माता हाथ ग्रहो।

कुंवरीने खम्मा खम्मा करती

कुंवरीने खमा खमा करती, माता ज्ञानामृत पाती.
'धम्मो मंगलमुक्किट्ठंना' मंगल पाठो भणती,
माता निज कुंवरीने प्रेमे, धर्मामृत नित पाती.....कुंवरीने0

शान्त वदन निर्मल नयनोमां आत्मा ऊज्ज्वल जोती,
धर्मरत्न थाशे मुज कुंवरी, भणकारा अनुभवती.....कुंवरीने0

'अखंड आनंद ध्रुवपद तारुं' हालरडां शुभ गाती,
'सिद्धपणाने साधो कुंवरी', आशिष मंगल देती.....कुंवरीने0

ज्योतिषीओ ज्योतिष जोयां, आ कुंडली कोई न्यारी,
विदेहनी विभूति आवी, अद्‌भुत मंगलकारी.....कुंवरीने0

आ कुंवरी छे सीमंधरनां स्मरणो उर धरनारी,
'कहानगुरु तीर्थंकर थाशे'—जिन धुनिमां सुणनारी....कुंवरीने0

निर्मलहृदयी अल्पभाषिनी, मिष्ट वचन वदनारी,
अलिप्त रहेशे परभावोथी, निजानंद रमनारी.....कुंवरीने0

सीमंधरना नंद पधार्या, शी पुण्यावलि जागी,
झूलो झूलो लाडली मारी, आजे हुं बडभागी.....कुंवरीने0

शान्त शीतल परमाणु जगना, आवी वस्या तुज तनमां,
उपशमरस-अवतार ज्ञानसागर ऊछळे अंतरमां.....कुंवरीने0

चिरं जीवो चिरं जीवो जगदम्बा भवतारी,
स्वानुभूति मतिश्रुत लब्धिथी विश्व ऊजाळनहारी.....कुंवरीने0

प्राक्-कथन

हमारे परमोपकारी, अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके सदुपदेश, पूर्वसंस्कार तथा अपने तीव्र पुरुषार्थसे पूज्य बहिनश्री चंपाबेनको लघुवयसे ही भवभ्रमणका अभाव तथा आत्महित कर लेनेकी–सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी तीव्र उत्कंठा वर्त रही थी। अतः उन्होंने लघुवयमें ही सम्यग्दर्शनरूप स्वानुभूतिका उग्र पुरुषार्थ कर वह मंगलदशा प्राप्त कर ली थी इत्यादि बातोंका इन पत्रों द्वारा पूर्ण एवं सुन्दर ख्याल आता है। उन्होंने अपने ज्येष्ठ बंधु श्री हिम्मतभाई व अन्य सगे-सम्बन्धी एवं साधर्मीयोंको लिखे हुए अध्यात्मरसभीगे पत्रोंका इसमें समावेश किया है। आत्मार्थी जीवोंको इन पत्रोंके द्वारा अवश्य पुरुषार्थकी प्रेरणा मिलेगी।

पूज्य बहिनश्री सम्यक्त्वप्राप्तिके पूर्व
बहुत भक्तिपूर्वक गाते थे वह गीत

अमूल्य तत्त्वविचार

(हरिगीत छंद)

बहु पुण्यकेरा पुंजथी, शुभ देह मानवनो मळ्यो,
तोये अरे ! भवचक्रनो आंटो नहि एके टळ्यो;
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो ? १.

लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं ते तो कहो ?
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं, ए नय ग्रहो;

वधवापणुं संसारनुं नरदेहने हारी जवो,
एनो विचार नहि अहोहो ! एक पळ तमने हवो !!! २.

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंझीरेथी नीकळे;
परवस्तुमां नहि मुंझवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धांत के पश्चावत् दुःख नहीं. ३

हुं कोण छुं क्यांथी थयो ? शुं स्वरूप मारुं खरुं ?
कोना संबंधे वळगणा छे ? राखुं के ए परहरु ?
एना विचाक विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्या,
तो सर्व आत्मिक ज्ञाननां सिद्धांततत्त्व अनुभव्या. ४

ते प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं ?
निर्दोष नरनुं कथन मानो 'तेह' जेणे अनुभव्युं;
रे ! आत्म तारो ! आत्म तारो ! शीघ्र एने ओळखो,
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो, आ वचनने हृदये लखो. ५

—श्रीमद् राजचंद्र

पत्रांक - १

वि.सं. १९८७-८८
(ई.स. १९३१-३२,)

.....!

आत्मा आनन्दमय है, ज्ञानपिंड़ है, सहजानन्दी है; किन्तु उसको पानेके लिए अनादिकालसे सच्चा प्रयत्न नहीं किया है। इस भवमें नहीं करेगा तो, किस भवमें करनेका सोचा है?

जड़ एवं चैतन्य दोनोंके स्वभाव प्रतिपक्ष हैं। रूपी ऐसे जड़ याने मूर्त-पुद्गल, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श सहित हैं और आत्मा उससे रहित है, अरूपी है।

किन्तु जीवको यह सब भाषामें बोलने मात्र है, उसे अपने स्वरूपका प्रेम कहाँ आता है? प्रेम लाए बिना मोक्ष नहीं मिलेगा। पुरुषार्थ किए बिना, परिश्रम किए बिना, अनन्त सुख तीनकालमें नहीं मिल सकता।

बस यह ही....

विशेष लिखनेसे क्या मिले? अंतःकरणमें परिणमन किए बिना, संसारके प्रति उदासीनता लाए बिना, वैराग्यबल बढ़ाए बिना, उपशमबल बढ़ाए बिना, अपने अनंत सुखका मार्ग हमें नहीं मिलेगा। जीव करता कुछ नहीं और थोड़ेमें अधिक समझ कर बैठ जाता है। हमें यदि स्वस्वरूपकी चाहना हो, परिभ्रमणसे थके हों तो, धीरे धीरे (शनैः शनैः) मार्गमें चले बिना, पुरुषार्थ किए बिना, बातें करनेसे या पत्र लिखनेसे स्वस्वरूप नहीं मिलेगा। किन्तु जीव अभी परिभ्रमणसे थका ही कहाँ है? अपने पर प्रेम ही कहाँ है?– अन्यथा बिना पुरुषार्थ किए चैनसे बैठ नहीं सकता।

आप तो पुरुषार्थ करते होंगे। मैं मुझे प्रमादी लगती हूँ। कुछ नवीन या विशेष नहीं हो रहा है—ऐसा लगता है; बस इतना ही; वैराग्यबल बढ़ाना। मुझे व आपको यह ही कर्त्तव्य है।

लि.

बहिन चंपाके वंदन

*

पत्रांक - २

करांची
दि. १०-६-१९३०
(वि.सं. १९८६
ज्येष्ठ शुक्ला १४, मंगलवार)

पूज्य ज्येष्ठ बंधुकी सेवामें,

करांचीसे लि. बहिन चंपाके बहुत ही प्रेमसे पायवंदन स्वीकार करना।

विशेषमें लिखना है कि, आपका पत्र मिला, पढ़कर हकीकत जान ली।

बंधु! यहाँ आत्माकी सार्थकता नहीं बन सकती। अतः उदासीनता वर्तती है। किसी समय आत्मा ऐसे विचारमें चढ़ जाता है कि, कोई बुलाए तो मेरा ध्यान भी नहीं होता है। काम करना भी भूल जाती हूँ। मेरे दिन 'आत्माके विचार ही विचारमें' चले जाते हैं। आत्माके विचारमें किसीके साथ बोलना भी सुहाता नहीं है। अभी तक आत्माके विचार चलते हैं। वहाँका सत्संग मुझे बहुत याद आता है। अब तो वहाँ आकर, मोक्ष, मोक्ष और मोक्षकी ओर लक्ष्य रखना है। एक दिन जब यह आत्मा ऊँची दशाको पहुँचेगा तब संयमी होगा। पत्र लिखते रहना; प्रमाद नहीं करना; जरूर लिखना। आपके पत्रसे आनन्द होगा। आज आपका पत्र आनेसे मुझे बहुत ही आनंद हुआ है। बस, यह ही–

लि. आत्मार्थी बहिन चंपा

पत्रांक - ३

करांची

आत्मार्थी बंधु,

जीवने अनादिकालसे अमृतस्वरूप ऐसे आत्माको नहीं पहचाना है। अतः जन्म-मरण होता रहता है। अमृतस्वरूप-ज्ञानस्वरूप ऐसे आत्माकी पहचान करानेवाले पूज्य कानजीमहाराज जैसे गुरु अब मिले, अतः ऐसी भावना होती है कि—यह जन्म-मरण कैसे टले? पुरुषार्थ कैसे प्रारंभ हो? आत्मस्वरूपकी प्राप्ति कैसे हो? ऐसी भावना रहा करती है, परंतु यहाँ गुरुके दर्शन नहीं है, उनकी वाणी नहीं है, सत्संग नहीं है, अतः यहाँ रहना दुष्कर हो गया है। यद्यपि बचपनसे ही मैं करांचीमें रही हूँ; फिर भी जन्म-मरणका अंत किस उपायसे हो, ऐसी भावनाके कारण यहाँ रहना जरा भी नहीं पुसाता है।

भैया, मुझे लगता है कि, यदि मैं यहाँ ज्यादा दिन रहूँगी तो पुरुषार्थ मंद हो जाएगा, प्रमादी हो जाऊँगी, क्योंकि यहाँ धार्मिक साधनोंकी दुर्लभता है। अतः यहाँ स्थायी कैसे रहना? आप लिखते हैं कि, धर्म अर्थात् (बिना हठके सहज ही)सत्य बोलना, सरलता, नम्रता, सहनशीलता रखना आदि, परंतु भैया! ये सभी

गुण यहाँके वातावरणके अनुसार टिके रहें, ऐसा मुझे नहीं लगता, इनको टिकानेके लिए, कड़ा पुरुषार्थ रखनेके लिए, आंतरिक धर्म प्रकट करनेके लिए, आगे बढ़नेके लिए, वैसा वांचन एवं वातावरण तो चाहिए ही।

भाई! ऐसे सुंदर मनुष्यदेहकी एक पल भी व्यर्थ नहीं जाए –ऐसी मेरी इच्छा है।

बहुत बार ऐसे स्वप्न आते हैं कि, जैसे मैं और आप प्रवचन सुनने गए हैं। मैं आपको प्रश्न पूछती हूँ, आप उत्तर देते हैं; इतनी देरमें आँखें खुल जाती हैं। तब ऐसा लगता है कि, कहाँ वह सत्संग और कहाँ वह भाई? कहाँ वह देश और कहाँ मैं? उस समय आप गाते हो वह गीत मुझे बहुत ही याद आता है।

''जागकर देखूँ तो जगत दीखे नहीं, निंदमें अटपटे रंग भासे''

बस इतना ही। अब लंबा पत्र लिखनेका मुझे अवकाश नहीं है । अभी मुझे सुशीलाभाभीको भी पत्र लिखना है। मेरे पत्रका उत्तर तुरंत लिखें।

लि.

आपके पत्रकी आतुरतासे इंतज़ार करती

आपकी नन्हीं बहिनके पायवंदन

*

पत्रांक - ४

आदरणीय पूज्य बंधुकी सेवामें,

वढ़वाण शहरसे लि. आपकी छोटी बहन चंपाके पायवंदन अतीव प्रेमसे स्वीकारना।

विशेष लिखना कि, आपका पोस्टकार्ड एवं कवर (लिफाफा) दोनों मिले। आप लिखते हैं, वह सब सत्य है। आपका पत्र पढ़कर, मैंने बहुत विचार किया। मेरा आत्मा कितना दृढ़ है; उसका बहुत विचार किया। आपको ऐसा लगेगा कि, 'तेरे आत्मभाव उन्नतिक्रममें होनेसे, तुझे सब सरल लगता है; परंतु भाई, मैं जब बहिनके घर करांची थी, तबसे मुझे धर्मके संस्कार तो हैं। 'यद्यपि बहिनके घर थी, तब इतना गहन ज्ञान नहीं था, परंतु था सही'।

'मनुष्यजन्म पाना दुर्लभ', 'सत्य बोलना', 'क्रोध नहीं करना', 'ब्रह्मचर्य पालनसे इतना लाभ' आदि थोकड़े (चौदहमार्गणा वर्णन) पढ़नेसे एवं धार्मिक पुस्तक पढ़नेसे, मैं जानती थी। मेरा आत्मा बहुत वैराग्यवंत था। धीरे धीरे पुस्तकें पढ़नेसे वैराग्य बढ़ता गया एवं मेरा आत्मा बाह्यज्ञानसे इतना दृढ़ हो गया कि, मुझे ब्रह्मचर्यमें वास्तविक महत्ता लगती थी। उस समयके मेरे विचार

धर्म, वैराग्य, ब्रह्मचर्यके विषयमें बहुत दृढ़ थे। करांचीमें बचपनसे ही मुझे त्याग, ब्रह्मचर्य इत्यादिकी बहुत महत्ता थी। इस समय जैसे जैसे ज्ञानमें गहनता आती गई, वैसे वैसे धर्मके विषयमें, वैराग्य-त्याग, ब्रह्मचर्यके विषयमें अति दृढ़ता हो गई है; आत्माका स्वरूप कुछ भिन्न है ऐसा समझमें आया तो अब यह दृढ़ता निःशंकरूपसे इसी तरह रहेगी। उस समय शायद ऊपर ऊपरकी (ऊपरी) दृढ़ता हो–ऐसा आप मानो–उस बातको डेढ़ साल हो गया है। पूर्वकी दृढ़ता यथार्थ दृढ़ होते होते अभी तो बहुत ही दृढ़ हो गई है और वह इसी तरह रहेगी—ऐसा मैं निश्चित कहती हूँ, विश्वासपूर्वक कहती हूँ। जीवनके अंत तक यह दृढ़ता एक ही प्रकारकी रहेगी।

मैं करांचीमें, बहिनके घर थी, तभीसे–बचपनसे ही–मुझे दीक्षित होनेके भाव थे। बंधु! जैसे आपका चित्त बचपनसे ही वैरागी था, आपको संसारमें रहना नहीं सुहाता था; वैसे मुझे भी बचपनसे दीक्षा अंगीकृत करनेके भाव थे। मेरे भावकी बात, मैंने अपनी एक सहेलीको कही थी। धीरे धीरे मेरी दीक्षा लेनेकी बात, हम रहते थे उस मकानमें और करांचीमें कितनी ही जगह फैल गई और कई लोग मुझ पर नाराज़गी दिखाने आए, परंतु मेरे भाव अड़िग थे। वढ़वाण आनेके पश्चात् गोराणी (स्थानकवासी साध्वी)में मैंने कुछ विशेष देखा नहीं। अंतरके भाव अंतरमें रहे। अब तो पूज्य कानजीमहाराज जैसे गुरु मिले; अब तो भव का अभाव कैसे हो; यही भावना होनेसे करांचीमें रहना मुश्किल हो गया है।

लि. बहिन चंपाके वंदन

पत्रांक -५

वढ़वाण

सावन, वि.सं. १९८७,

(ई.स. १९३१; उम्र १७ वर्ष)

पूज्य भाभी सुशीला,

इस लोक और परलोकमें परम आत्मिक सुख प्राप्त करो ऐसा मेरा शुभाशिष।

मेरे भाईके दोनों पत्र मिले। पढ़कर बहुत ही आनंद हुआ; परंतु अभी आपका पत्र नहीं मिला, जिससे आज पत्र लिखने बैठी हूँ। आपको पत्र लिखनेकी निवृत्ति नहीं मिलती होगी, या तो आलस(प्रमाद) होती होगी; परंतु कभी निवृत्ति लेकर पत्र लिखो तो अच्छा। आप यहाँ थी तब तो कहती थीं कि, मैं अवश्य पत्र लिखूँगी, परंतु वहाँ जानेके बाद पत्र क्यों नहीं लिखतीं; वह बताना।

अहा, भाभी! कर्मकी विचित्रता तो देखो! कहाँ आप, कहाँ मैं, कहाँ बड़े भाभी, कहाँ बड़ी बहन; सभी अलग-अलग जगहमें हो गए। मेरे भाईको सुरत नहीं जाना था, फिर भी कर्म उसे धक्के मारके ले गया। सारा जगत कर्मका नचाया नाच रहा है।

भाभी! क्या लिखना और क्या नहीं लिखना उसकी कुछ

समझ नहीं आती। एक साथ बहुतसे विचार स्फुरायमान होते हैं उसमेंसे क्या लिखुँ और क्या नहीं लिखुँ?

अहा, भाभी! हमने थोड़े दिन तो बहुत आनन्द किया। हम आमने-सामने प्रश्न पूछते, उसका बुद्धि अनुसार निर्णय करते थे। ऐसे आनंदके दिन फिर कब आए? हे प्रभु! ऐसे आनंदके दिन जल्दी देना।

भाभी, (आप) दोपहरको सामायिक करती होंगी, 'आत्मसिद्धि' शास्त्र सीखती होंगी, पंद्रह द्रव्य चालू रखे होंगे, सत्संगकी खोजमें होंगी। थोड़ा थोड़ा पुरुषार्थ करके निमित्ताधीन वृत्तिको, निमित्तोमें मिश्रित नहीं होने देना।

मैं आपको थोड़े प्रश्न पूछती हूँ, उसका उत्तर देना। इन प्रश्नोंकी स्पष्टता बहुतबार हो चुकी है, परंतु आपको वे याद हैं या नहीं? यह जाननेके लिए पूछती हूँ: (१) तीर्थंकर और केवलीमें क्या फ़रक है? (२) अरिहंत और सिद्धमें क्या फ़रक है? (३) तीर्थंकर और अरिहंतमें क्या फ़रक है? (४) पंच-परमेष्ठीमेंसे जन्म-मरण कितने करते हैं और कितने नहीं करते? इतने प्रश्नोंका उत्तर निवृत्तिके समय लिखना।

भाभी, आपका अथाग प्रेम विस्मृत नहीं होता। धर्मध्यानमें वृद्धि करना। मेरे भाईका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

*

पत्रांक -६

वढ़वाण
(वि.सं. १९८७,
ई.स. १९३१;
उम्र १७ वर्ष)

परम पूज्य बड़े बंधु,

आपका पत्र मिला। पढ़कर हकीकत जानी। आप हमारे पत्रका इंतजार करते होंगे, परंतु हमें पत्र लिखनेका ज्यादा समय नहीं मिलता है। पूज्य कानजीमहाराजने अमरेलीमें जो प्रवचन किया था– वह 'सुंदर वोरा'के उपाश्रयमें, पढ़नेमें चल रहा है। भीतरसे सुंदर न्याय निकलते हैं। पुरुषोत्तमदास बहुत सुंदर न्याय निकालते हैं। उपाश्रयमें बहुत रस और आनन्द आता है, किन्तु वह रस एवं आनंद क्षणिक है। भीतरसे कुछ आचरणमें रख सकें, तो अच्छा।

अनादिसे अज्ञानतासे भटके, देहबुद्धि घटी नहीं। जो देहबुद्धि घटे तो कुछ काम आए–ऐसा है। देहके भीतर जो अरूपी ज्ञानशक्ति रही हुई है; वह ही आत्मा है। वह देहसे न्यारी वस्तु है।

संसारसे उस पार आत्माका स्वरूप रहा है। उसको प्राप्त करनेका उपाय कुछ दूसरा होना चाहिए। यह धर्म ऐसा क्यों कहता है? वह धर्म ऐसा क्यों कहता है? उसकी समझ बिना शुद्ध बुद्धि नहीं हो सकती। भीतरमें उतरकर, 'प्रतिपक्ष रही हुई वस्तु यह जड़ है' और 'यह चैतन्य है' ऐसे एकदम विभाग करनेके बाद ही, दूसरे धर्म क्या कहना चाहते हैं, वह समझमें आता है। भले ही वह सम्यक्दशा तक न पहुँचा हो, फिर भी भेद कर सकता है।

बस, हृदयमें बहुत लिखनेके (भाव) हैं, पर नहीं लिखती हूँ, क्योंकि चाहे जितना बोलें-लिखें पर कुछ (अन्तरमें) प्राप्त करें, तब कार्यकारी है–ऐसा है। ६ मासमें नहीं मिला, वह प्राप्त कर लेना, यह ही अनुशंसा (सिफारिश) है।

पत्र लिखते समय आत्मा (मन) उपाश्रयमें है, अतः बराबर नहीं लिखा गया है।

आत्मा अनंत, उसके भाव अनंत, वे पत्रमें कैसे आलेखित किए जाएँ? आपने मुझे पूछे हुए; प्रश्नोंका निर्णय मैंने किया है; परन्तु पत्र लिखनेका अवकाश नहीं है। आत्मा है ही, उसका मुझे निर्णय है, यह निश्चित् मानना। अब भी मेरेमें कुछ नहीं है, जो है वह है, बाकी कुछ नहीं। बस इतना ही, पत्र लिखना।

लि.

बहिन चंपाके वंदन

पत्रांक -७

वढ़वाण वि.सं. १९८७
(ई.स. १९३१, उम्र १७ वर्ष)

परम पूज्य बड़े भाई,

आपका पत्र मिला, पढ़कर बहुत आनंद हुआ। मेरे पहलेके पत्रकी विचारश्रेणी उलझनभरी थी। उसका कारण–यह विषय अति कठिन है और अभी मैं बहुत विचार भी नहीं करती हूँ, प्रमाद हो जाता है। एक बजेसे तीन बजे तक तो मैं उपाश्रयमें बैठती हूँ, शामको प्रतिक्रमण करने जाती हूँ, तो वापस आठ-नौ बजे आती हूँ। आनेके पश्चात् बातोंमें और पढ़नेमें थोड़ी रात जाती है, बाकीका समय काम करनेमें जाता है। शिथिलता काफी आ गई है, प्रमादपना बहुत आ गया है। वांकानेरमें बहुत प्राप्त किया था। श्रीमद् राजचंद्र, यथार्थ ही लिखते हैं कि–'एकान्तमें जितना संसार क्षय होनेवाला है, उसका सौवाँ हिस्सा भी कुटुंबरूपी काजलकी कोठरीमें नहीं होगा'।

क्या यह जगत? मैं कौन हूँ? आप कौन हैं? मेरी भाभी कौन हैं? देहमें ही हमें 'मैं'पना रहा करता है। इस देहकी एकबार स्मशानमें राख होगी ही और आत्मा तो कहाँ चला जाएगा, फिर भी देह पर ममत्वभाव कहाँ कम है? ऐसे ही ऐसे इतने वर्ष बीत गए और बाकी रहे वर्ष बीतते क्या देर लगेगी? ऐसे ही ऐसे

अनंतकाल चला गया तो यह मनुष्यदेह जाते क्या देर लगेगी? फिर भी आँख कहाँ खुलती है? सत्य वस्तु क्या है, उसका कहाँ भान है? 'यह देह जो अनित्य है, उसको' प्यार करना है! धर्म...धर्म पुकारना है, समकित...समकित पुकारना है, पुरुषार्थ कुछ करना नहीं है, बैठे बैठे कोई समकित दे तो ले लेना है!

आत्मिक सुख तो कोई अलग ही वस्तु है, उसकी पहचान नहीं हुई। अरे! गंध तक नहीं आई, और ज़हरको अमृत माना है। आत्माके सुखको पुद्गलके सुख जैसी कल्पना की है। वह सुख पुद्गलसे अतीत है, वचनसे अतीत है, कल्पनासे अतीत है। वह सुख—पौदगलिक सुखमें आनंद माननेवालोंके सामने—छलका दिया जाए, परंतु 'उस सुखका स्वाद', 'वह आनंद', उसे नहीं आता। पौदगलिक सुखमें आनंद माननेवालोंको उस सुखकी क़ीमत नहीं होती। जो आत्मा पौद्गलिक सुखसे थका हो, वह सुख जिसे गलत ही भासित होता हो उसे वह अमृत पिंड मिलता है, उसकी क़ीमत भी उसे होती है।

आप लिखते हो कि, 'आपने तो बचपनमें ही समकितका नाम सुना' परंतु नाम सुना, उससे क्या हुआ? नाम तो बहुत बार सुने। हमने पूर्वके पुण्य ऐसे (इकट्ठे किए) कि, हमारे लिए वस्तु तैयार ही है। पूज्य कानजीमहाराज जैसे महात्माका समागम, श्रीमद् राजचंद्र जैसे महान आत्माके पुस्तक आदि निमित्त तैयार हैं; फिर भी अपने पुरुषार्थकी ही कमी है। 'मैं आत्मा और यह जड़' ऐसा मुँहसे बोलते रहना है। परंतु श्रद्धामें तो शून्य! 'मैं आत्मा और यह जड़' उतनी भी अंतःकरणपूर्वक सच्ची श्रद्धा हो और जड़में एकरूप

होते आत्मा संकोच पाए (भय लगे) तो उदासीन हो, फिर भी (वह) व्यवहारसे श्रद्धा कहलाती है और आगे बढ़ने पर निश्चय समकित प्राप्त हो सकता है।

इसको तो (अभी) पुद्गलमें तन्मय रहना है। पौद्गलिक सुख भी चाहिए और आत्मिक सुख भी चाहिए, वह कहाँसे मिले? जिसको ऐसा लगे कि पौद्गलिक सुख झूठा है, सच्चा सुख तो इससे अलग होना चाहिए। उसे प्राप्त करनेकी चटपटी होती है, उसे प्राप्त होता है। उस सुखके लिए, वह रोता (बैचेन रहता) है। हम तो देहका सुख रखकर आत्मिक सुख लेने जाएँ, वह कहाँसे मिले?

अहा जीव! क्या तेरी मूढ़ता! क्या तेरी विभावदशा!

प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और रसबंध–उसकी समझ कर्मग्रंथमें भी है।

जीव अनंतकालसे झूठे आग्रह और मानके कारण भटका है नहीं तो ऐसी दशा नहीं होती।

बस यह ही—

लि.
बहिन चंपाके
सविनय प्रणाम

पत्रांक -८

वांकानेर वि. सं. १९८७
(ई.स. १९३१, उम्र १७ वर्ष)

पूज्य भाभी,

पूज्य कानजीमहाराजका प्रवचन सुननेके पश्चात् हृदयमें ऐसे अच्छे भाव उठते थे कि उनका क्या वर्णन करुँ? ओ प्रभु! मुझे सदा पूज्य कानजीमहाराजका और धर्मीका सत्संग हो–ऐसा मैं चाहती हूँ।

जहाँ तक 'अच्छे निमित्तसे चढ़ा जाएगा और बुरे निमित्तसे गिरेंगे' ऐसी दशा है, तब तक आत्माका कल्याण होना दुर्लभ है। (कैसा भी बुरा निमित्त हो, परंतु हृदयकी गहराईसे धर्मका प्रेम जाएगा नहीं।)

आप सोचते होंगे कि, 'मै यहाँ अकेली, धर्मका वातावरण भी नहीं,' परंतु बैचेन मत होना, मैं भी यहाँ अकेली ही हूँ, यहाँ भी धर्मका वातावरण नहीं है। जीव अकेला आया और अकेला ही जाएगा, तो फिर जब उसे परवस्तुका वियोग होता है, तब क्यों बैचेन होता है? परंतु मुझे तो अभी धर्मीसे दूरी है, निमित्ताधीन वृत्ति है, तब तक निमित्तकी आवश्यकता है। पोरबंदरमें पूज्य कानजीमहाराज द्वारा उपदेशित धर्मकी मशगूलतामें, मेरे दिन बीतते थे। विचार भी ये ही, स्वप्न भी ये ही। पोरबंदरसे आए, उस दिन, रातको भी पूज्य कानजीमहाराजके स्वप्न आते थे। दूसरे दिनसे सांसारिक प्रवृत्तिओंने घेर लिया, जिससे आधे विचार प्रवृत्तिके और आधे धर्ममें मशगूल रहनेवाले रहे, परंतु स्वप्नमें फ़र्क हो गया। मुनि महाराजके स्वप्नके बदले सांसारिक प्रवृत्तियोंके स्वप्न आने लगे। जितनी आजिविकाके लिए प्रवृत्ति होती है, उतनी ही आत्माके लिए

होगी तब धन्यता होगी। यदि वस्तु समझमें आए कि 'इस वस्तुका स्वरूप ऐसा है व उस वस्तुका स्वरूप ऐसा है,' तब तो आत्माके लिए प्रवृत्ति हो। किन्तु जाननेकी सच्ची जिज्ञासा-पिपासा ही जागी नहीं हो, तो समझमें नहीं आता।

पूज्य कानजीमहाराजका व्याख्यान मैंने लिखा है। दूसरा, आप लिखते हो कि, मुझे एक प्रश्न पूछो–मेरे भाईने 'आत्मसिद्धि' शास्त्रके अर्थ वढ़वाण समझाये थे; तो मैं पूछती हूँ कि—

प्रश्न–(१) देह और आत्मा भिन्न है, उसकी सिद्धि कैसे होगी? क्योंकि वह आत्मा तो हमें दिखनेमें नहीं आता, तो 'आत्मसिद्धि' शास्त्रमें जितने तर्क हैं उसके अर्थ लिखकर भेजना।

प्रश्न–(२) यदि देह और आत्मा अलग है तो वह आत्मा नित्य है, उसका मुख्य तर्क क्या है? बहुत लोग कहते हैं कि, 'आत्मा अनित्य है, क्षणिक वस्तु है। इसलिए उसकी नित्यताका तर्क 'आत्मसिद्धि' शास्त्रमें है; उसका अर्थ (श्रीमद् राजचंद्र) पुस्तकमें देखे बिना लिखना।

'आत्मसिद्धि' शास्त्र पूरा किया होगा। सामायिक करते होंगे। प्रतिक्रमण सीखते होंगे। बस यह ही, पत्रका उत्तर तुरंत देना।

मेरे भाईकी तबियत अच्छी होगी, हम सब साथमें हों तो कितना अच्छा! पूज्य कानजीमहाराजके सत्संगमें वैराग्यको पुष्टि मिलती थी। वैराग्यका सिंचन होता था।

लि.
आपको हर घड़ी याद करनेवाली
बहिन चंपाके पायवंदन।

पत्रांक - ६

वांकानेर, सं. १९८७
(ई.स. १९३१, उम्र १७ वर्ष)

पूज्य भाभीश्री,

आपका पत्र मिला। पढ़कर हकीकत जानी। आपने प्रश्नोंके उत्तर लिखे हैं, वे सही हैं। ज्ञानावरणीयका क्षयोपशम आपको थोड़ा कम होनेके कारण पुरुषार्थ करके ज्ञानको बढ़ाना।

हमने सांवत्सरिक प्रतिक्रमण किया है। आपने भी किया होगा। आज तक मेरेसे कुछ अविनय, अपराध, विराधना हुई हो तो, अंतःकरणपूर्वक पुनः पुनः क्षमा याचती हूँ।

आपको आश्विन महिनेमें वांकानेर आना है या पोरबंदर जाना है या दालोद जाना है? आपके पिताश्री वढ़वाण आए थे और आश्विन मासमें आपको दालोद ले जानेका कहते थे, तो आपको ज्ञान आवरित करने दालोद जाना है या ज्ञान बढ़ाने पोरबंदर जाना है? जैसी आपकी इच्छा।

दूसरा, पुण्य बांधकर, मनुष्य-आयुष्य बाँधकर, अपने साथ भतीजेरूप संबंध बाँधकर, एक आत्माने यहाँ जन्म लिया है। बड़े भाभी और उस पुण्यवंत आत्माका स्वास्थ्य अच्छा है।

पत्र जल्दी लिखना।

लि.
बहिन चंपाके पायवंदन

पत्रांक - १०

वि. सं. १९८७
(ई.स. १९३१, उम्र १७ वर्ष)

परम पूज्य भाई,

'यह जगत क्या है? और उसकी विचित्रताका कारण क्या है?' उसके विषयमें लिखकर इसके साथ भेजा है। उसमें जो भूल हो, वह जरूर लिखकर भेजना।

इस लेखके भीतर दूसरी बहुत बातें लिखी है, परंतु ऐसा लिखनेकी मुझे बहुत इच्छा हुई; अतः लिखा है। भूल जरूर लिखना।

इस आत्माको, अभीके भाव अनुसार, एकान्त प्रिय है, सत्यकी व समकितकी अभिलाषा है। आत्माका अस्तित्व, मोक्ष व मोक्षके उपाय आदि, गहन विचार करते, इस लेखमें लिखे अनुसार ज्ञात होता है। अभी आत्मिक परिवर्तन नहीं हुआ है। उसके अनुसार करनेकी अभिलाषा है। हृदयसे सच्चा निर्णय करें तो ही, सच्ची श्रद्धा कहलाती है। सिद्धांतके कहनेपर श्रद्धा रखनी, वह सच्ची श्रद्धा नहीं कहलाती है। ज्ञानावरणीयका क्षयोपशम करनेमें चित्त बहुत लग गया है, फिर भी सांसारिक प्रवृत्ति करते समय विचारोंको एक तरफ रखना पड़ता है।

आपके सत्संगके बाद जानकारी बढ़ती चली है। वह जानकारी होनेका मुख्य निमित्त-कारण आप होनेसे मेरे पर आपका उपकार है। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। सांवत्सरिक संबंधी क्षमा याचती हूँ। बस इतना ही।

लि. बहिन चंपाके वंदन

विशेष - १

वि. सं. १९८७
(ई.स. १९३१,
उम्र १७ वर्ष)

"किस मार्ग पर हूँ"

(पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित लेख)

'मैं किस मार्ग पर हूँ' वह मैं समझ नहीं सकती। आत्माको अपने गुणदोष देखनेका अभ्यास ही नहीं है। दूसरेके दोष देखनेका जीवको अनादिकालसे अभ्यास है। अगर किसी जीवको ऐसा पूछा जाय कि, 'फलाना व्यक्ति किस मार्ग पर है? वह बताओ' तो, जल्दी कह देता है। परंतु कभी अंतरमें उतरकर विचार नहीं किया कि, 'मैं किस मार्ग पर हूँ?' यहाँ मेरी दशा ऐसी है कि–मुझे एकबार निवृत्ति लेनी है, खोज खोज कर दोष निकालना है, मोक्षका बीज प्राप्त करना है; परंतु कब करुँगी? एक बार...एक बार...एक दिन कहते कहते सारी जिंदगी तो नहीं चली जाएगी ना? यहाँ प्रमादावस्था है, उसके निमित्त मिलते, शिथिलता होनेसे, सत्यासत्यका विचार नहीं हो सकता। जिससे हृदयकी गहराईमें दुःख होता है। थोड़े दिन पहले हृदय व्याकुल हो गया था और ऐसा होता था कि, हे जीव! तू सत्य कब खोजेगा? ऐसा विचार आनेसे दुःख होता था; परंतु बुद्धि अल्प होनेसे, प्रमादावस्था होनेसे, सत्यासत्यका विचार कुछ

स्फुरायमान नहीं हुआ, और उससे हृदयमें व्याकुलता हुई, फिर दूसरा निमित्त मिलनेसे, आनंदित हो गया, ऐसी समय-समयकी स्थिति है।

मुझे सत्य प्राप्तिकी खटक तो भीतर भीतर रहती ही है, परंतु वह यथार्थ वेदन होगा या भ्रान्तिरूप–वह मैं समझ नहीं सकती हूँ। हे प्रभु! मेरा यह वेदन भ्रान्तिरूप हो तो यथार्थ वेदन उत्पन्न कराओ, सत्य समझाओ।

यहाँ एकान्त सुहाता है। किसीको एकान्त दुःखदायक लगता है। मुझे तो एकान्त सुखदायक लगता है। सामान्य मानवके साथ मेरी दशाकी तुलना करती हूँ तो, मात्र 'धर्मकी रुचि हुई है' उतनी ऊँची है। ज्ञानी पुरुषके साथ मेरी दशा तुलना करने पर, 'मैं एक पामर पशु हूँ' ऐसा मुझे लगता है। बहुत बार आत्मा प्रमाद सहित हो जाता है।

यहाँ प्रमादावस्था है। कुछ महिने पहले मेरी दशा अभीकी तुलनामें ऊँची थी; आत्माको पुरुषार्थ करनेका सूझता था; कषायोंको जीतता था। अभी प्रमाद है। अनेक बार सत्यासत्यकी उलझनके विकल्पोंमें यह जीव उलझ जाता है। ऐसी समय-समयकी स्थिति है।

*

(स्वयंके लिए टिप्पणी)

(वि.सं. १९८८, ई.स. १९३२)

इस प्रकारकी प्रतिज्ञा मैंने कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा तक ली है। मैंने कार्तिक शु. १५ तक शक्करकी तथा साकर न खानेकी प्रतिज्ञा ली है। चैत्र शुक्ला १४ से कार्तिक शुक्ला १५ तक दो बार खानेकी प्रतिज्ञा ली है, बीचमें कुछ भी न खाना–ऐसी प्रतिज्ञा ली है। आमके दिनोंमें पक्के आम न खानेकी प्रतिज्ञा है।

विशेष - २

वि. सं. १९८७

(ई.स. १९३१, उम्र : १७ वर्ष)

* किस मार्ग पर हैं ? *

(पूज्य बहिनश्री द्वारा लिखित लेख)

चौदह-पंद्रह वर्षकी उम्रमें मेरी दशा ऐसी थी कि–मनुष्यभव पाना दुर्लभ है। सत्य, ब्रह्मचर्य, दया आदि पालना चाहिए, वह मैं समझ सकती थी; आत्मार्थी पुरुषोंके चरित्र सुनकर वैराग्य उत्पन्न होता था।

चौदह-पंद्रह वर्षकी वयमें मुझे धर्म रोपनेवालेका सत्संग मिला। तब मेरे भाव ऐसे थे कि–आत्मार्थीओंके चरित्रोंको सुनकर वैराग्य उत्पन्न होने लगा। बहुत बार संयम लेनेके भाव होते थे, परन्तु संयम याने क्या? संयम लेनेवालेको कैसा चारित्र पालना चाहिए, वह कुछ समझ नहीं सकती थी। परंतु इतना तो अवश्य था, कि धर्ममें मुझे रुचि हो गई; वह पूर्वजन्मके संस्कार थे। ऐसे करते-करते स्वदेशमें आए। वहाँ पूर्वके पुण्ययोगसे सत्संग मिला। आत्मा क्या? पुण्य क्या? पाप क्या? ये सब कहनेरूप जाना। अभी मेरी दशा ऐसी है, वहाँ क्या करुँ? निश्चयपूर्वक क्या लिखूँ कि–'हम किस मार्ग पर हैं'? एकान्तसे कुछ भी नहीं लिख सकती।

इसलिए मैं तो पुण्यके पथ पर, पापके पथ पर एवं सत्य प्राप्त करनेके पथ पर हूँ। जब शुभ विचार आते हैं, वह पुण्य बंध है, प्रमादप्रेरित आत्मा हो तब, पापका बंध है। हे प्रमाद! तू जा, हे पुरुषार्थ! तू प्रकट हो।

विशेष - ३

* रत्नकणिका *

(पूज्य बहिनश्रीके सम्यक्त्व प्राप्तिके पूर्वके [१]लेखोंमेंसे)

आत्मा ज्ञानस्वभावी है, वह जानता है; देह जड़ है, वह जानता नहीं है। इसलिए आत्मा और देह एक नहीं है, जुदा है। ऐसे आत्माका देहसे भेदज्ञान करना।

जैसे [२]कालीजीरीकी चूरीमें रखा हुआ मिसरीका टुकडा ऊपर ऊपरसे कडुआ होता है, पर भीतरसे कडुआ नहीं होता, वैसे क्रोधभावमें परिणमित आत्मा ऊपर-ऊपर क्रोधी होता है; पर भीतरमें क्रोधी नहीं होता अर्थात् मूल क्षमा स्वभाव वैसाका वैसा ही रहता है। इसलिए आत्मा मूल स्वभावतया क्रोधसे अलग है। ऐसे आत्माका क्रोधसे भेदज्ञान करना।

❀

१. लेख=छोटा निबंध, खत । २. कालीजीरी=कड़वी औषधि ।

पत्रांक - ११

वि. सं. १९८७-८८
(ई.स. १९३१-३२,
उम्र : १७-१८ वर्ष)

सत्संगयोग्य श्री सुशीलाभाभी,

अभी आपका पत्र नहीं है तो लिखना।

भाभी! आप लिखती हैं कि, लंबे पत्र लिखकर धर्मका वर्णन करना।

आपने लिखा है; अतः उदीरणा करके लिखती हूँ।

भाभी! आज कल करते-करते बहुत दिन बीत गए, अरे! अनंतकाल बीत गया, परंतु सत्य सुख नहीं मिला। क्या वह कम खेददायक है? यह जगत क्या? इस जगतकी रचना क्या? आत्मा क्या? पुनर्जन्म क्या? ये सब अनेक भांतिके विकल्प क्या? पर वस्तु क्या? इन सबके विचार करते घबराहट हो जाती है। जिंदगी

नीरस लगती है, हृदय रोता है; परंतु वह रोना गलत है, अनंत-कालसे अनंती वेदना सहन की, पर असुहावना क्यों नहीं लगता? सिहरन क्यों नहीं होती? सत्यकी तड़प क्यों नहीं लगती? संसारमें एकान्त दुःख क्यों नहीं लगता? अभी संसारमें एकान्त दुःख इस जीवको लगा ही नहीं, नहीं तो संसारके पीछे इतना ज्यादा लगा नहीं रहता।

अहा जीव! अहा प्रभु! एक दिन भी तुझे प्रभुके वियोगमें दुःख हुआ है? भीतरसे दर्शनके लिए हृदय रोया है? प्रभुका वियोग तुझे दुःखदायक लगा है? अरे रे! अभी तो इनमेंसे कुछ भी नहीं है, वहाँ प्रभु कहाँसे मिले? ऐसे ही ऐसे क्या अनंतकाल भी चला जाएगा?

प्रभु! तेरे दर्शनका पहला सोपान उदासीनता है। संसारकी ओर उदासीनता आनेसे प्रभुके दर्शन होंगे। सत्यासत्यका निर्णय हो तो मुक्तिका मार्ग मिले।

अभी मेरे में तो कुछ भी नहीं है। अभी तो संसार प्यारा लगता है, नहीं तो ऐसा नहीं होता। भाषासे बोलना, पत्रमें लिखना, वह बेकारकी बातें करने जैसा है।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। नव तत्त्व सीखती होंगी। आध्यात्मिक विचार कैसे चलते हैं? वह लिखिएगा। पत्र जरुर लिखना।

लि.

बहिन चंपाके वंदन

*

पत्रांक - १२

वांकानेर

(वि.सं. १९८९, ई.स. १९३३,
उम्र १९ वर्ष)

.....।

आपकी विशेष जिज्ञासाके कारण यह पत्र लिखती हूँ। मैंने जामनगरसे आनेके पश्चात् पूज्य कानजीमहाराजका प्रवचन लिखा है।

भव्य-अभव्यकी चिन्ता अभी नहीं करना। भव्य होगा वह मोक्ष प्राप्त करेगा ही ऐसा कुछ नहीं है। भव्यजीवमें मोक्ष पानेकी योग्यता है, परंतु पुरुषार्थ करे तो प्राप्त हो। बिना पुरुषार्थके तीनकालमें मोक्ष मिल जाये–ऐसा नहीं है। अनंत चौथे काल इकट्ठे हो जाए, फिर भी बिना पुरुषार्थके अपने आप मोक्ष नहीं होगा। अनंतकाल तक भव्य-अभव्य दोनों रहेंगे। उसका कारण यह है कि, भव्य जीव पुरुषार्थ नहीं करते; अतः मोक्ष नहीं पाते। इसलिए अभी तो हमें पुरुषार्थ ही करना योग्य है। जैसे बने वैसे संसारकी प्रीति कम करना। ऐसा किए बिना दूसरा उपाय ही नहीं। वैसा किए बिना इस पर्यटनका किनारा नहीं आएगा। अगर हम इस पर्यटनसे वास्तवमें थके हों व 'अब बहुत हुई' ऐसा लगता हो और हम विश्रान्ति लेना चाहते हों, तो पुरुषार्थ किए बिना, गहरी तमन्ना जगाए बिना, उदासीनता बिना और वैराग्यकी धाराके बिना तीनकालमें आत्मस्वरूप प्राप्त नहीं होगा।

अनादिकालसे जीव सुख सुख ऐसे छटपटाता रहता है, सुखके पीछे तरसता रहता है। उस सुखका सच्चा स्वरूप सत्पुरुष ही जानते हैं। जीव 'जड़मेंसे सुख आता है', ऐसा उल्टा मानकर बैठ गया है। भ्रान्तिमें पड़ा है; परंतु वह सुखगुण या आनंदगुण अपना (स्वयंका) है, अपनेमेंसे ही प्राप्त होनेवाला है। अनंत आनंदमय या सुखमय स्वयं ही है। अनादिकालसे अज्ञानी जीव संसारमें भ्रमण करते-करते, सुखकी खोजमें दौड़ते-दौड़ते, अनंत दुःखोंको सहन करता रहा है। कभी सत्य सुख दिखानेवाले मिले तो, शंका रखकर अटक गया, कभी सच्चे सुख दिखानेवालेकी अवगणना करके अपना स्वरूप प्राप्त करते हुए अटक गया, कभी पुरुषार्थ किए बिना अटका, कभी पुरुषार्थ किया तो थोड़े पुरुषार्थके लिए वहाँसे अटका और गिरा।–इस तरह जीव अपना स्वरूप प्राप्त करते हुए अनंतबार अटका। पुण्योदयसे यह देह पाया, यह दशा पाई, ऐसे सत्पुरुष मिले; यदि अब पुरुषार्थ नहीं करे तो किस भवमें करेगा? हे जीव! पुरुषार्थ कर; ऐसा संयोग और सच्चा आत्मस्वरूप बतानेवाले सत्पुरुष बार-बार नहीं मिलेंगे।

आपका तो निरुपाधिमय जीवन है। हजारों उपाधिओंके बीच भी पुरुषार्थ करके तिर जाए-ऐसी आत्माएँ हैं, तो अपना तो निरुपाधिमय जीवन है। क्या इस जीवने कभी पुरुषार्थ करनेका निर्धार किया है? अभी भी उसे परिभ्रमण प्यारा लगता होगा? वास्तवमें, अगर ऐसा न हो तो पुरुषार्थ किए विना वह चैनकी श्वास न ले। उसे अपने स्वरूप पर श्रद्धा नहीं है, उस पर प्यार नहीं है, परवस्तु पर प्रेम है, परिभ्रमणकी थकान नहीं है, 'मैं बँधा

हुआ हूँ, मेरा स्वरूप अलग है' ऐसा उसे ख्याल नहीं। मूर्ख भी बंधनकी इच्छा नहीं करता, फिर भी यह जीव बंधनकी इच्छा करता है यह एक आश्चर्य है।

सारा संसार सुखकी इच्छा करता है। सुखी, सुखकी इच्छा नहीं करता, दुःखी, सुखकी इच्छा करता है। सुखीको तो ऐसा लगता है कि, ''हम अब सुखी हो गए, अब हमें कोई इच्छा नहीं।''

अनंतकालसे बहुत सद्गुरु मिले और बहुत कहा, परंतु जीव कहाँ मानता है? श्रद्धा कहाँ लाता है? जीव-कर्मका संयोग अनादि है। उसमें पहला और पीछे कुछ नहीं। वह पहले बंधा हुआ नहीं था और बादमें बँध गया–ऐसा नहीं है; परंतु उनका संबंध अनादि है।

यह जीव अनादिकालसे परिभ्रमणसे क्यों नहीं थकता? क्या उसे विश्रान्ति लेनी नहीं सुहाती होगी?

पुरुषार्थ बिना किए कर्म टूटेंगे नहीं। हे जीव! बिना पुरुषार्थ किए कोई छुटकारा नहीं। बिना पुरुषार्थ किए इस पर्यटनका किनारा नहीं आएगा। वैराग्य और समभावका बल बढ़ाना। अभी मुझे और आपको–सबको–यह ही कर्तव्य है।

कोई पुरुष बंधनको नहीं इच्छता और इस आत्माको बंधनकी इच्छा है–यह एक आश्चर्य है।

पूज्य कानजीमुनिके दर्शन करने योग्य हैं। मैं बहुत प्रमादी हूँ, कुछ करती नहीं हूँ। मेरी क़ीमत ज्यादा नहीं आँकना।

लि.

बहिन चंपाके वंदन।

पत्रांक - १३

(वि.सं. १९८७-८८, ई.स. १९३१-३२)

(उम्र वर्ष १७-१८) वढ़वाण

(पूज्य बहिनश्रीके पत्रोंमेंसे)

मैं वैरागी जीवोंका उपदेश पढ़ती हूँ। ऐसे जीवोंका वैराग्य वास्तवमें पुरुषार्थ जगाए–ऐसा है। हम सबको तो सयानी सयानी बातें करना आता है।

*

पूज्य कानजीमहाराजका संवेग-निर्वेगका प्रवचन (व्याख्यान) तो अद्‌भुत था। वह ज्ञानकी उन्नतिक्रमकी कलाका ज्ञान कराता है।

*

आत्मानुभव जैसी वस्तु है, परंतु जिसे संसार खारा लगे व संसारमें जिसे कहीं भी सुख न लगे, उसे उसकी क़ीमत होती है। अभी हम तो संसारको प्यारा करके बैठे हैं और आत्मिक सुख चाहिए, तो कहाँसे मिले? संसार सच्चा है या झूठा-उसका निर्णय करें और अन्तरसे ऐसा लगे कि संसारमें एकांत दुःख ही है, तो फिर सुखकी शोधमें जानेकी तड़प जगे। विचार करने पर संसार

हलाहल विष जैसा लगे, तो फिर अमृत कहीं होना चाहिए–ऐसी श्रद्धा हो। ऐसा होता है कि–ओ प्रभु! संसार दुःखसे भरपूर है, अतः इससे सुख अन्य जातिका होना चाहिए। उसकी खोज करनेके, पश्चात् तो हृदय रोने लगता है। महापुरुषोंको संसार झूठा लगा था। इसलिए प्रभुके दर्शनकी इतनी तड़प लगी थी।

*

पहले हम सबको विचार करना चाहिए, कि संसारमें दुःख है या सुख? संसारमें जिसे सुख लगे, उसे आत्मिक सुख बहुत दूर है। जिसको संसार हलाहल विष जैसा लगा, उसको आत्मानुभव निकट है। अहा! अनादिकालका आयुष्य इस ही तरह व्यतीत हुआ, तो यह आयुष्य बीतते कितनी देर? हम तो प्रमादी होकर बैठे हैं। मैं बहुत प्रमादी हो गई हूँ। मेरा सब—ध्यान और सर्व–अभी बहुत इधर-उधर हो गया है।

*

हम सब तो समकित समकित करते हैं, परंतु योग्यता या पात्रताके बिना समकित कहाँ समाएगा?

अभी मैं कुछ पढ़ती नहीं हूँ। (ऐसे ही ऐसे) इस ही तरह मनुष्यभव चला जानेवाला है? अभी तो पंद्रह वर्ष थे और थोड़ी देरमें अठारह वर्ष हो गए तो फिर बीस या पचीस होते कितनी देर लगेगी? (ऐसे ही ऐसे) इस ही भांति जिंदगी पूरी होनेवाली है?

*

पूज्य बहिनश्री स्वानुभवप्राप्तिके पूर्व निज-प्रभुविरहसे तीव्र वेदनपूर्वक गाते थे उस गीतके कुछ अंश

दूर कां प्रभु! दोड तुं, मारे रमत रमवी नथी;
आ नयनबंधन छोड तुं, मारे रमत रमवी नथी. ...दूर० १.

प्यासु परम रसनो सदा, शोधुं परम-रस-रूपने;
अनुभव मने अवळो थयो, एवी रमत रमवी नथी. ...दूर० २.

हुं तो सुधानो स्वादियो, चाल्यो सुधानी शोधमां;
त्यां झेरनो प्यालो मळ्यो, एवी रमत रमवी नथी. ...दूर० ३.

तुं आवीने उत्साह दे कां फेंक किरण प्रकाशनां;
आ लक्ष विण रखडी मर्यानी, रमतने रमवी नथी. ...दूर० ४.

हे तात ! ताप अमाप आ, तपवी रह्या छे त्रिविधना;
ए तापमांही तपी मर्यानी, आ रमत रमवी नथी. ...दूर० ५.

नथी सहन करी शकतो प्रभु! तारा विरहनी वेदना;
हे देव! तुज दर्शन विना, मारे रमत रमवी नथी. ...दूर० ६.

नथी समज पडती हे प्रभु! कई जातनी आ रमत छे;
गभराय छे गात्रो बधां, मारे रमत रमवी नथी. ...दूर० ७.

होये रमत घडी बे घडी, बहु तो दिवस बे चारनी;
आ तो अनंता युग गया, एवी रमत रमवी नथी. ...दूर० ८.

त्रिभुवनपति! तुज नामना थाक्यो करी करी सादने;
सुणता नथी क्यम दासने, आवी रमत रमवी नथी. ...दूर० ९.

पूज्य बहिनश्री सम्यक्त्वप्राप्तिके पूर्व बहुत ही वेदनपूर्वक गाते थे वह गीत

कंचन वरणो नाह रे, मुने कोई मिलावो; कंचन०
अंजन-रेख न आंखन भावे, मंजन शिर पडो दाह रे; मुने। कंचन०
कौन सेन जाने पर मनकी, वेदन विरह अथाह रे, मुने.
थरथर धूजे देहडी मारी, जिम वानर भरमाह रे; मुने। कंचन०
देह न गेह न नेह न रेह न, भावे न दुहा गाहा रे, मुने.
'आनंदघन' वहालो बांहडी झाले, निशदिन धरुं उमाहा रे; मुने। कंचन०
सीमंधर भगवान रे, मुने कोई मिलावो; कंचन०
पूर्णानंदघन देव रे, मुने कोई मिलावो; कंचन०

सम्यग्दर्शन प्राप्तिके पूर्व पूज्य बहिनश्री भावपूर्वक गाते थे वह काव्यपद

कायानी विसारी माया, स्वरूपे समाया एवा,
निर्ग्रंथनो पंथ भव--अंतनो उपाय छे.

❀

संगत्यागी, अंगत्यागी, वचनतरंगत्यागी,
मनत्यागी, बुद्धित्यागी, आपा शुद्ध कीनो है.

❀

विशेष - ४

वि.सं. 1985 (ई.स. 1929) वर्षके
परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्रीके प्रवचनोंमेंसे
पूज्य बहिनश्री द्वारा ग्रहण किया हुआ

आत्मा ज्ञान आदि अनंत गुणोंसे भरा है, अनुपम है; वह आत्मा देहातीत, वचनातीत, विकल्पातीत, निर्विकल्पस्वरूप है। वह आत्मा देहसे, वचनसे, विकल्पोंसे उस पार बिराजित है; वहाँ अन्तरमें, गहराईमें जाए तो प्रकट होता है। उसे अन्तरसे पहचान, अन्तरमें जाकर अनुभव कर। वह ही करनेयोग्य है। (हे जीव! पुरुषार्थ करके, सबसे अलग होकर, आत्माको पहचान।

❀

विशेष - ५

(पूज्य भगवती बहिनश्री चंपाबेनकी निजानंदवेदन सम्बन्धित नोंध)

आनंदका दिन

वांकानेर वि.सं. १९८९
(ई.स. १९३३)(उम्र १९ वर्ष)
(शामको लगभग ३॥ बजे)

चैत्र (गु. फाल्गुन) कृष्णा १० को सोमवार दोपहर सामायिकमें, निजस्वरूप अनुभवमें आया। अनंतकालसे नहीं समझमें आया स्वरूप, समझमें आया। आनंदसागर उछल रहे थे। वह स्वरूप आश्चर्यकारी व अद्‌भुत है। परम उपकारी परम प्रतापी सद्‌गुरुदेवको नमस्कार।

❀

विशेष - ६

चैत्र (गुज. फाल्गुन) कृष्णा दसवींके दिन हुई मंगलकारी स्वानुभूति सम्बन्धी पू. बहिनश्रीकी नोंध

चैत्र (गु. फाल्गुन) कृष्णा दसवींका अपूर्व दिन

वांकानेर, सं. १९८९ (वैशाख माससमें लिखा गया)
(ई.स. १९३३; उम्र १९ वर्ष)

स्वस्वरूपका लक्ष्य आते, चैत्र (गुजराती फागुन) कृष्णा दशमी सोमवारको दोपहरमें, ज्ञातांधाराकी वृद्धि होने पर, उस स्वरूपका ध्यान होने पर, उसमें एकाग्र होने पर, उस स्वरूपमें वेग तीव्रतासे आकर उपयोग परलक्ष्यसे छूटकर, अपने स्वस्वरूपमें स्थिर होकर, चैतन्यभगवान उस स्वरूपका अनुभव करते थे। अपने निर्विकल्प सहज स्वरूपमें खेल रहे थे, रमण कर रहे थे। अनुपम और अद्‌भुत ऐसे आत्मद्रव्यकी महिमा कोई अपार है! चैतन्यदेव आनन्दतरंगोंमें डोलते थे।

अहा ! अनन्तकालसे छीपे हुए आत्मभगवान प्रकट हुए, उनका छीपा हुआ ऐसा अनुपम अमृतस्वाद वेदनमें आया, अनुभवमें आया।

हे श्री सद्‌गुरुदेव! वह आपका ही प्रताप है।

अपूर्व आत्मस्वरूप प्रकट हुआ, वह परमकृपालु सद्‌गुरुदेवका ही प्रताप है।

भारतखँडमें अपूर्व मुक्तिमार्ग प्रकाशनेवाले परम उपकारी गुरुदेवको नमस्कार!

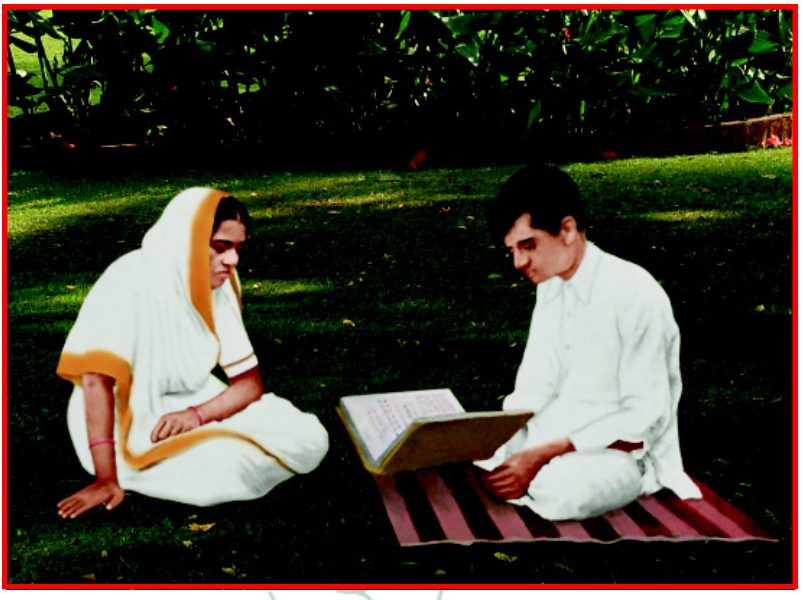

पत्रांक - १५

वढ़वाण,
वि. सं. १९८९,
(ई.स. १९३३; उ.व. १९)

[भाई हिम्मतभाई!]

संसार दुःखमय है। अतः आत्माको पुरुषार्थ करके उसमेंसे तार लेनेकी आवश्यकता है। प्रमाद करना योग्य नहीं है। जैनदर्शन सत्य है ऐसा मैंने तो जाना है। तुम भी प्रमाद छोड़कर, वैराग्य बढ़ाकर विचार करोगे तो ऐसा ही जाननेमें आएगा। प्रमाद कर्तव्य नहीं है।

लि०
बहिन चम्पाका वंदन

(उपरोक्त पत्र पढ़कर श्री हिम्मतभाईने पूछा कि, 'बहिन क्या तुझे समकित हुआ है? उसके उत्तररूपमें लिखे गये पूज्य बहिनश्रीके पत्रमेंसे)

पत्रांक - १५

वढ़वाण

वि. सं. १९८९, चैत्र

(ई.स. १९३३; उ.व. १९)

भाई हिम्मतभाई!

इस आत्माको परिभ्रमणका किनारा आ गया है.....।

लि०

बहिन चम्पाका वंदन

❀

आज मंगळ मंदिर द्वार खूल्यां

आज मंगळ मंदिर द्वार खूल्यां, मंगळ द्वार खूल्यां रे;
स्वानुभूतिना स्वाद आज चाख्या, मंगळ द्वार खूल्यां रे.
हीरा-मोती-रत्नथी वधावुं भगवती मात,
परम सुभाग्ये पधारिया, आज आनंद अति उभराय रे.
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (१)

ओगणीस वर्षे उल्लसी, आत्मलगन दिनरात,
वात गमे नहि विश्वनी, प्रभु पाम्ये ज होय निरांत रे,
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (२)

भाळ्या निज भगवानने, चेतनघन अविकार,
आनंदसागर ऊछळ्या, अहो भवभ्रमण निस्तार रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (३)

ज्ञायकबाग महीं रमो, करो चिदामृतपान,
अप्रतिहत साधकदशा, झट बोलावे केवळज्ञान रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (४)

मति-श्रुत उदधि ऊछळ्या, तुज हृदये जगमात,
सीमंधर-कुंदकुंदनी तमे लाव्या अलौकिक वात रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (५)

शीघ्र शीघ्र अविकल्पता, ध्रुव धामे धरी नेह,
सविकल्पे संभारतां--आ भरत छे के विदेह रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (६)

अनुभवभीनी स्पष्ट छे तलस्पर्शी तुज वाण,
'वचनामृत'ना पानमां डोल्युं आखुंय हिन्दुस्तान रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (७)

अमृतमीठी छांयडी, तारी अति सुखकार;
धर्मरत्न गुणमूर्ति छो, छो उपशमरस-अवतार रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (८)

झाझुं शुं कहुं मा तने, द्यो दानेश्वरी दान,
शिवपुर साथे राखजो–ए पूरो अंतर अरमान रे
....मंगळ द्वार खूल्यां रे. (९)

पत्रांक - १५-अ

(ता. २१-४-१९३३) वि.सं. १९८९
चैत्र कृष्णा १२, शुक्रवार, सुरत

बहिन चंपा,

पत्र पढ़कर मैं तो दिंग ही हो गया हूँ। कोई न कोई तो जागता ही रहता है–ऐसा जानकर हर्ष होता है। पंचम कालके अंत तक शासन जीवित है। कहते हैं, कि इस कालमें संत मिलने दुर्लभ है। मैं तो संतको खोजने–मिलने–न गया, पर संत मेरे घर पधारे हों, ऐसा लगता है, (आप जैसे संत मेरे घर पधारे ऐसी) अत्याधिक दुर्लभताएँ प्राप्त हो गई, फिर भी कुछ न हो तो किसकी भूल?

मेरी शंकाएँ क्या क्या है, मैं कहाँ अटकता हूँ, मेरा स्वभाव, मेरी निर्बलताएँ–सब तेरी जानकारीसे बाहर नहीं है। ''निशानी कहाँ बताऊँ रे, तेरो अगम अगोचर रूप''–ऐसे उत्तरसे बहुत अधिक आशा मैं रखता हूँ। पत्रमें ज्यादा लिखनेकी इच्छा नहीं होती है।

हो सके तो पत्र लिखना। लंबा नहीं तो कमसे कम छोटा लिखना, तो अच्छा।

लि.
हिम्मतभाई

पत्रांक - १६

वि.सं. १९८९
(ई.स. १९३३)

पूज्य भाभीश्री,

चि. सुरेशका देह छूट जानेसे खेद हुए बिना नहीं रहता, यह स्वाभाविक है; क्योंकि जिसे बचपनसे पालपोषकर बड़ा किया उसका अचानक देह छूट जाय; उससे बहुत ही धक्का लगे, परन्तु क्या करें? आयुष्यकी दोरके आगे किसीका उपाय नहीं है। वह आत्मा बिचारा मनुष्यदेह प्राप्त करके, सभी अनुकूलता प्राप्त की, परन्तु कम आयु होनेसे मनुष्यदेहको साफल्य किये बिना चला गया। हमें भी एक बार यह छोड़कर चला जाना होगा। संसारमें कोई किसीका नहीं है। संसारमें कोई किसीकी माता या पुत्र नहीं हो सकता; मात्र भ्रान्तिसे सर्व कल्पित माना गया है। जगतमें सर्व ज्ञानपिंड आत्मा ही रहे हैं। कोई उसके पुत्र या माता कहाँसे हो? जीव ऐसे विपरीत राग-द्वेष करके, अपनत्व मान कर, संसारमें परिभ्रमण करता है। जो वस्तु गई है, वह वस्तु वापस आनेवाली नहीं है। मात्र जीव आर्त्तध्यान करके एवं कर्म बांधकर स्वयं

अपराधी होगा। उस वस्तुको थोड़े दिन पश्चात् विसारना तो है। अतः आर्त्तध्यान कम करके आत्माको वैराग्यकी ओर झुकाना ही श्रेयस्कर है। यह संसार एकांततया दुःखसे जल रहा है; उसमें जो सत्य सुखका मार्ग ढूँढना वही आत्माको कल्याणरूप है।

अब तो संसारके भ्रांतिरूप सुखमेंसे निकलकर सत्य सुख ढूँढे बिना, पुरुषार्थ किए बिना, धारावाही पुरुषार्थ किए बिना, इस जीवको किसी भी काल, इस पर्यटनका किनारा आनेवाला नहीं है। इस दुःखका अन्त आनेवाला नहीं है। यह जीव जहाँ जन्मा, जिस देहको धारण किया है, वहाँ-वहाँ अभिमानसे वर्तकर, अपनत्व मानकर, अनादिकालसे घूमता है; और अभी भी उस परिभ्रमणका किनारा नहीं आया है। अहा! जीवको अनंत दुःख पड़े, फिर भी उसने नरकके अनंत दुःख सहे, फिर भी वह क्यों नहीं जागृत होता? वैराग्य पर पाँव रखकर, क्यों अब भी चला जा रहा है? क्या अब भी जीवको दुःखमय संसार प्रिय लगता है? अब तो जागृत हुए बिना छुटकारा नहीं है। अतः अब तो आर्त्तध्यानके बदलेमें वैराग्य बढ़ाना आत्माको श्रेयभूत है।

तुम्हारे माता-पिताको भी धीरज देकर आर्त्तध्यान कम करवाना। क्या करें? आयुष्यके पास किसीका उपाय नहीं है। बस, यह ही।

लि.
चंपाके वंदन।

पत्रांक - १७

वि.सं. १९८९
(ई.स. १९३३)

पूज्य भाईश्री

आपका पत्र मिला। ज्ञानगुण व आनंदगुण, वह आत्माका स्वभाव है; अतः वह आत्मामेंसे मिले ऐसा है, वह बाहरसे नहीं मिलता है। चैतन्यदेवके आनंदके एक अंशके सामने, सारे चौदह राजूलोकका सुख व आनंद धूल जैसा है, विष्ठा जैसा है। अरे चैतन्य! तेरे सुखको छोड़कर कहाँ दौड़ रहा है? बाहरसे क्या लेना है? अपनेमें है वह बाहरसे नहीं मिलेगा, त्रिकाल नहीं मिलेगा। उसके लिए चाहे जितना परिश्रम करोगे, चाहे जितना काल परिश्रम करोगे, तो भी नहीं मिलेगा। अपनेमें है, वह बाहरसे नहीं मिलेगा।

लि.
हितेच्छु बहिन

पत्रांक - १८

(वि.सं. १९८९,
ई.स. १९३३)

परम उपकारी भाईश्री,

आपका पत्र मिला। आपके जैसे पात्र आत्माको कहाँ तक शंकाएँ करते रहना है? फिर ऐसा अपूर्व योग कब पाओगे? जिसका हृदय और आपका हृदय एक है, उसके प्रति विश्वास नहीं रखोगे तो फिर किसके प्रति रखोगे? आपको चढ़नेका स्थान कहाँ रहा?–वह विचारो।

निश्चयसे कहती हूँ कि, संसारमें एकान्त दुःख है। आपको न समझमें आता हो तो भी श्रद्धा रखो। वर्तमानमें ही दुःखी हो, श्रद्धा रखो, जरूर श्रद्धा रखो। जिसके प्रति आपको श्रद्धा है, उसके वाक्यके प्रति श्रद्धा रखो। पूज्य महाराज साहेब जैसेका समागम मिला, अब तो श्रद्धा करो। महाराज साहेबको पूछनेसे वस्तुस्वरूप मिल रहा है।

जिसको जागना है, वह एक वाक्यसे जागता है। अतः जागना हो तो जागो, चेतना (सावधान होना) हो तो चेतो। यह ही।

लि.
शुभेच्छक बहिन

*

विशेष - ७

(पूज्य गुरुदेवश्रीने दशा सम्बन्धित पूछाया था, उसके उत्तररूप पूज्य बहिनश्रीने लिखकर भेजा था। उसमेंसे...)

(वि.सं. १९८९,
ई.स. १९३३)

हिंमतभाई (आठ दिन) आए, उस समय तीन बार निर्विकल्परूप स्थिरता हुई थी। परिणति ज्ञायककी ओर रहा करती है। अभी कुछ पढ़ा जाता है, कुछ विचार चलते हैं, पर वह ज्यादा रस सहित नहीं।

अंतरमें ज्ञाताधारा-भेदज्ञानधारा चलती रहती है। विभावोंसे विरक्ति रहा करती है।

जो दशा है, उसकी सब जानकारी दे दी है।

*

(पंडित हिम्मतभाईका पत्र)

पत्रांक - १६

सुरत
ता. २८-७-१६३३
(वि.सं. १६८६,
सावन शुक्ला ६, शुक्रवार)

बहिन चंपा और सुशीला,

आपके पत्र मिले।

'कहनेमें कुछ कमी नहीं रखी है' यह बात बिलकुल सत्य है। अब करना ही बाकी रहा है। आपके वैराग्यप्रेरक पत्रोंसे अभी भाव अच्छे रहते हैं।

कोई भी बाहरकी वस्तुका आधार छोड़कर, अपने पर ही आधार रखकर जीना, अपनेमेंसे ही सुख खोजनेमें निरंतर प्रयत्नशील रहना, वह तलवारकी धारसे भी अधिक कठिन है, परन्तु वह कठिन होने पर भी, बिना किए कहाँ छुटकारा है? क्योंकि कठिन तो कभी सरल होनेवाला है ही नहीं। तब क्या करना?

मैं अगले शुक्रवार आपकी ओर (पास) आऊँगा। नौ-दस दिन वहाँ रहूँगा। पत्र लिखना।

लि.
हिंमतके प्रणाम

पत्रांक - २०

वि.सं. १९९१
ई.स. १९३५
सोनगढ़

आत्मार्थी भाई हिंमतभाई तथा सुशीलाके प्रति,

आपकी भावनाके कारण, पत्र लिखनेका लक्ष्य आनेसे, पत्र लिखा जा रहा है। थोड़े दिन पहले आपका जो पत्र था। उसमें लिखते थे कि, परीक्षा आई होनेसे निवृत्तिके कारण, अभी मोक्षमार्गप्रकाशकका पठन होता है, तो शुद्धस्वरूपके लक्ष्यपूर्वक सेवित वह शुभयोग लाभ देता है। जैसे बने वैसे अशुभयोग कम करके शुभयोगमें, शुद्धस्वरूपके लक्ष्यपूर्वक, विशेषरूपसे प्रवर्तन हो वह लाभरूप है, हितरूप है।

शरीरकी प्रकृति, किसी समय शाताके रूपमें कभी अशाताके उदयमें वर्तती है। आपकी शरीरप्रकृति कमज़ोर रहती है–ऐसा आपके पत्रसे जाना था; तो जिसका जो स्वभाव है, उसके अनुसार वह परिणमे बिना नहीं रहता। शरीरका स्वभाव ही ऐसा है। क़ीमत तो उसकी है कि, ऐसे शरीरमेंसे जो आत्मसाधना साध ले।

लि.
निमित्तमात्र

*

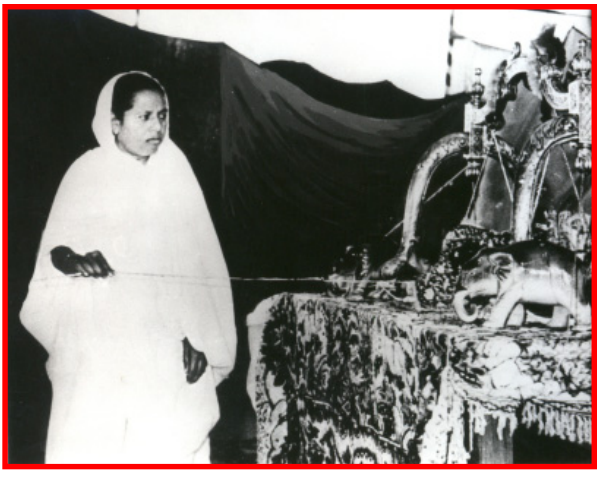

पत्रांक - २१

वि.सं. १९९२
(ई.स. १९३६)
सोनगढ़

सत्पुरुषोंकी कृपा इच्छुक सुशीला प्रति,

कल सुरतसे लिखा पत्र मिला है।

किसी भी तरहके कठिन रोगके उदयमें भी मुमुक्षुगण आत्महित भूलते नहीं। समपरिणाम, स्थिर परिणाम (कम आकुलता), सहनशीलता और धैर्य बढ़ाना वह ही श्रेयस्कर है।

आत्मा बाह्य प्रसंगोंसे भिन्न है। मन, वाणी, देह, संकल्प-विकल्प सर्वसे, आत्मा एक ज्ञायकस्वरूप भिन्न है, अलग है, वह लक्ष्य रखने योग्य है।

लि.

वीतरागस्वरूपके चरणकमल इच्छुक

पत्रांक - २२

वि.सं. १९९३
(ई.स. १९३७)
सोनगढ़

पूज्य बड़े बहिनश्री (बड़ी बहन) आदि,

आपका पत्र मिला। बहिन चंदुका विवाह माघ कृष्णा नवमीको है, वह जाना है। उस प्रसंग पर मुझे बुलानेकी आपकी भावना हो वह स्वाभाविक है। परंतु मेरा अंतरंग ऐसा हो गया है कि, मुझे यह स्थानको छोड़कर दूसरे स्थान जानेकी रुचि नहीं होती। दूसरी जगह कहीं भी जाना मुझे जरा भी नहीं सुहाता। यहाँ सत्पुरुषका समागम छोड़कर कहीं भी जाना सुहाता नहीं।

फिर ऐसे धमाचौकड़ीके प्रसंगमें आनेकी जरा भी रुचि नहीं है। मुझे तो एकान्तस्थानमें-निवृत्तिमें जीवन बीतना, वही रुचिकर है। दूसरे जीवोंका ज्यादा परिचय रुचिकर नहीं–ऐसा जीवन है। वहाँ शादीके प्रसंगमें, मेरे जैसेका क्या काम हो? मुझे शादीके प्रसंग पर आना जरा भी अच्छा नहीं लगता।

बहिनश्री (बड़ी बहन)! मेरा हृदय जैसा है, वैसी जानकारी

दी है । इसलिए आप मेरे हृदयकी ओर दृष्टि देकर, मुझे ऐसे प्रसंग पर बुलानेका अति आग्रह न करें, तो अच्छा–ऐसी मेरी नम्रभावसे विनती है। यद्यपि आपको मेरे प्रति भाव हो, वह स्वाभाविक है, क्योंकि आपने इस देहको पाला-पोसा है, परंतु मैं तो अपने भाव कहती हूँ । विवाहके बाद शांतिके समय, हमें मिलनेका प्रसंग बन जाएगा उस प्रसंग पर मिल सकेंगे।

वहाँ सर्वका स्वास्थ्य अच्छा होगा। चंदु, कंचन, कान्ति, शारदा आदि मजेमें होंगे।

लि.

बहिन चंपाके नम्रभावसे वंदन।

पत्रांक - २३

वि.सं. १९९३ (ई.स. १९३७)
सोनगढ़

पूज्य पिताश्री एवं सुशीलाका पत्र मिला, पढ़कर समाचार जाने। नम्र विनतीसे लिखती हूँ कि, आपने द्वितीया–तृतीयाको लेने आनेका लिखा, तो इतनी जल्दी आनेके लिए मेरे भाव बिलकुल नहीं उठते। यह, कोई लेने न आ जाए इसलिए लिखती हूँ।

ज्यादा अच्छा तो यह है कि–बड़ी बहन यहाँ आए तो उनको पूज्य महाराजसाहबका लाभ भी मिले और मिलन भी हो; फिर भी बड़ी बहिनको, वहाँ आनेका बहुत ही आग्रह रहता हो, तो उनके आग्रह हेतु ज्यादासे ज्यादा एक सप्ताह वहाँ आकर रहना और सबको मिल जाना–ऐसे मेरे भाव हैं।

बड़ी बहिन आदिको यथायोग्य वंदन।

पूज्य गुरुसाहिब सुखशान्तिमें विराजते हैं।

निरन्तर सद्गुरु और सत्संग ही चाहिए। यह ही भावना है।

एक आत्मा ही चाहिए यह ही भावना है।

लि.
बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन
–श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार

पत्रांक - २४

वि.सं. १९९३ (ई.स. १९३७, उम्र वर्ष २३) सोनगढ

पूज्य भाई हिम्मतभाई और सुशीला,

एक आत्माका (कान्तिका) देह छूट जानेसे मुझे वांकानेर जाना पड़ा था।

पूज्य बहिन और बहनोईको बहुत मानसिक आघात लगनेसे तथा भाई आदिको भी बहुत आघात लग गया है–ऐसा पत्र मिलने पर और बुलाने जैसा आशय होनेसे, वहाँ जानेकी आवश्यकता ख्यालमें आनेसे, वांकानेर गई थी। वहाँ दो दिन रहकर, पूज्य बहिन और बहनोईको साथ लेकर यहाँ आ गई हूँ।

पूज्य बहन और बहनोई यहाँ आए कि, तुरंत परमकृपालुकी कृपा द्वारा, उनकी ओरसे बहुत आत्महितका उपदेश और आश्वासन मिला था। सुबह और दोपहरको 'श्रीमद्' पढ़ा जाता था। पूज्यश्री अद्भुत उपकार कर रहे थे। उनके चरण, यहाँ अपने घर भी पड़े थे।

कृपालु सद्गुरुकी कृपा अद्भुत थी। सब लाभ बहुत अच्छा मिला था। सबको यहाँ अच्छी तरह शांति हुई थी। सबको यहाँ बहुत ही अच्छा लगता था।

चंदु, बहन आदि सर्वको इस ओरकी (सोनगढ़के ओरकी) महत्ता और अच्छा लगाव हुआ था।

सभी द्रव्य स्वतंत्र परिणमते हैं। पूरी कुदरत स्वतंत्र परिणमती है। कोई किसीका स्वामी नहीं। जीवोंने परका स्वामित्व माना है। वही उनका अज्ञानपना है और वही उनके दुःखका मूल कारण है।

जिनको पर प्रति स्वामित्व-अपनापन छूटा उनको राग भी छूट जाता है, क्रमपूर्वक पूर्ण वीतराग हो जाता है।

ऐसे प्रसंगोंमें आत्माकी ओर—आत्माकी विशेष वृद्धिकी ओर—संलग्नता वह योग्य है। आत्माके संभालपूर्वक रागका विस्मरण हो, वह प्रशंसा योग्य है। ऐसे प्रसंगोंमें विशेष-विशेष वैराग्य प्राप्त कर, विशेष-विशेष आत्महितकी वृद्धिमें संलग्न होना योग्य है।

वांकानेरमें सर्वका कल्पांत (रोना) देखकर साधारणका तो कलेजा फटे, वैरागीका वैराग फटे, ज्ञाता परिणामीका ज्ञाता फटे –ऐसा वह प्रसंग था।

जो बाह्य और अभ्यंतर परपदार्थका प्रेम विस्मरण करके सर्वांशे स्वरूपमें लीन हुए, उनको नमस्कार है, बारबार नमस्कार है।

लि.
परमपुरुष वीतराग आदि
सत्पुरुषोंको नमस्कार

*

पत्रांक - २५

वि.सं. १९९३
(ई.स. १९३७;
उम्र वर्ष २३),
सोनगढ़

भाई श्री हिम्मतभाईको कहना कि–यहाँ दोपहरको वांचनमें पूज्य साहेबने समयसार पढ़ना प्रारंभ किया है। इस कारण (वह) पढ़कर (उस पर) विचार किया होगा तो, विशेष लाभका कारण होगा।

बहिन चंदुको वहाँके, आपके धार्मिक वातावरणमें अच्छा लगता होगा।

बहिन (चंदु)! अनादिकी भ्रान्तिको लेकर स्थिर (लगते) ऐसे संसारमें, प्रेम करनेयोग्य (यदि कोई हो तो स्वयं) आत्मा और सत्संग आदि साधन ही हैं। विशेष प्रेम करने योग्य हो तो वे हैं। बाह्यसे संयोग बने या न बने, परंतु अंतरंगमें मुख्य रुचि वहाँ हो तो भी लाभरूप है।

परमपूज्य साहेब सुखशान्तिमें बिराजते हैं। ये ही–

श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार

❑

पत्रांक - २६

.....!

आप सबका लिखा हुआ पत्र मिला।

शान्ति-समाधि रखकर आत्मकल्याणमें संलग्न होना श्रेयस्कर है।

कोई आता है, कोई जाता है–ऐसा क्रम संसारमें चालू ही रहता है। शांति लाभरूप है। आत्मा स्वयं अकेला ही है।

लि.

बहिन चंपाके वंदन

–श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार

धर्म पर लक्ष्य देना। संसार बहुत दुःखस्वरूप है, कोई सुखी नहीं है। अतः आर्तध्यान व रौद्रध्यान न करते हुए, धर्मध्यान करने पर लक्ष्य देना।

द : जेठालाल

पत्रांक - २७

सोनगढ़, वि.सं. १९९३
(ई.स. १९३७; उम्र २३ वर्ष)
ज्येष्ठ शुक्ला ११, शनिवार

पूज्य बहिन और बहनोई आदि,

.....भविष्यका पोषण और शान्ति, परपदार्थके संबंधमें मानी जाती है, वह सत्य नहीं है। जगत अपनेसे टिकता है, अपने पुण्यसे ही टिकता है, अपनेसे ही शान्ति पाता है। अपनी वृत्तिसे दुःख है और अपनी वृत्तिसे ही सुख है।

संसारके प्रेमी (प्रेमपात्र) पदार्थके लिए चाहे जितना तरसे, फिर भी जो हुआ है सो हुआ है। समझकर शांति रहे वह हितरूप है।

जगत भूलकर आत्मास्वरूपारामी श्री सद्गुरु, श्री वीतरागको बारबार नमस्कार। ये ही,

–श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार
–बहिन चंपाके विनयपूर्वक वंदन

पत्रांक - २८

सोनगढ़, वि. सं. १९९३
(ई. स. १९३७) आश्विन शुक्ला ९

पूज्य बड़ी बहन तथा बहनोई आदि,

....यहाँ पर्युषण काफ़ी अच्छे हुए थे। गाँव-गाँवसे बहुत लोग पर्युषण पर आए थे। सुबह और दोपहरको प्रवचनवाणीका प्रपात अपूर्व बरसता था। वहाँ सभी 'श्रीमद् राजचंद्र' पढ़ते होंगे।

ज्ञानी कहते हैं कि, आत्मा और देह भिन्न है। वह भिन्न ही है। अतः अंत समयमें स्वाभाविक भिन्न पड़ते हैं। इसलिए पहलेसे ही आत्माको अलग करना, समझ लेना। राग-द्वेष और मोहकी अशुद्धतासे आत्माको अलग करना ही (जीवनकी) सफलता है। उसीकी भावना और चिंतवन लाभरूप है। वह प्राप्त हो–ऐसे साधनोंकी सेवना करनेकी भावना, वह हितरूप है।

उलझन वह कर्मबंधका कारण है। यह देह भी अपना नहीं तो अन्य वस्तु तो अपनी कहाँसे हो?

बाह्य और अभ्यंतर सर्व उपाधिसे छूटकर बड़े महात्मा जंगलमें बसते हैं और स्वरूपानंदमें मस्त रहकर आत्माको उज्ज्वल बनाते हैं, उनको धन्य है।

परम पूज्य कृपालु साहिब सुखशांतिमें बिराजते हैं।

लि. बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन
श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार

पत्रांक - २६

बहिन चंदु,

चाहे जिस तरहके प्रसंग हो, उसके बीच शांति वह श्रेयभूत है। अन्य कोई उपाय नहीं है। आकुलता उलटा नुकसानका कारण होगी। पूर्वके अपने ही परिणामका फल है–ऐसा जानकर शांति रखना, भावना भाना, आत्मरुचि बढ़ाना, वह स्वयंकी स्वतंत्रताकी बात है। उसे बाहरके संयोग रोक सके–ऐसा नहीं है। सच्ची रुचि होगी तो भविष्यमें कभी भी, भविष्यत् भवमें, आत्मार्थीको इच्छित संयोग जरूर मिल जाएँगे। आत्मामें पड़े हुए रुचिके बीज कहाँ जाएँगे? इसलिए जिस तरह हो, वैसे आत्मरुचि बढ़ाना। चाहे जैसे संयोगमें शांति और धीरज रखना, वह लाभका कारण है।

संसारकी जाल बाहर नहीं है, परंतु अंतरमें ही है।

परमकृपालु गुरुसाहिब सुखशांतिमें बिराजते हैं।

श्री वीतराग आदि सत्पुरुषोंको नमस्कार

पत्रांक - ३०

पूज्य बड़ी बहिन, बहनोई एवं बहिन चंदु,

परम उपकारी कृपालु गुरुसाहेब सुखशांतिमें बिराजते हैं।

अनुकूल-प्रतिकूल संयोग होना यह तो संसारकी स्थिति ही है। उसको बदलनेमें आत्माका समर्थपना नहीं है; किन्तु इस संसार समुद्रमेंसे आत्माको तार कर ऊँचे लाना वह अपनी स्वतंत्रताकी बात है।

रिश्तेदारके रूपमें जीवोंका मिलना और बिछुड़ना, वह जड़-चैतन्यके संबंधके कारण हुआ ही करता है। यद्यपि रागके कारण बारबार स्मरण हो जाय, वह स्वाभाविक है, परंतु अनादि परिभ्रमणरूप संसारमें हजारों सगे-संबंधीयोंका वियोग होता है,

हजारोंका राग कुदरतने भूलाया है। फिर जीव जहाँ जन्मता है, वहाँ अपनापन मान बैठता है; परंतु वे रिश्तेदार भी छूट गए हैं और फिरसे दूसरे किए हैं। ऐसा क्रम इस संसारचक्रमें चला ही करता है।

वहाँ, परद्रव्यमें शरण और विश्राम माना जाता है, वह यथार्थ नहीं है। परद्रव्यका संबंध तोड़नेके लिए, पूर्ण वीतराग सत्स्वरूप प्राप्त करनेके लिए, सत् कैसे मिले? उस ओर रुचि जो करता है एवं सत्पुरुषोंका शरण जो अंतरंगसे स्वीकारता है, वह आत्मविश्राम पाता है।

बने हुए प्रसंगसे वृत्तिको जैसे हो वैसे उठाकर, उसे आत्महितकी जिज्ञासापूर्वक वांचन-विचार आदिमें जोड़ना वह इच्छने योग्य है।

वहाँ सभी 'श्रीमद्' पढ़ते हो, वह अच्छा है; पढ़ने जैसा है।

जगतमें सबसे अधिक आत्मकल्याणका तथा सत्पुरुषका प्रेम हो वही लाभ देता है।

लि.
बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन
–श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार

पत्रांक - ३१

वि.सं. १९९३,
(ई.स. १९३७,
२४वाँ वर्ष)
चैत्र शुक्ला १०, सोनगढ,

पूज्य बहिन, जीजाजी, तथा चंदु आदि,

आपने लिखा, कि सोनगढ़ बारबार याद आता है और पूज्य कृपालु साहेबके प्रवचन बहुत याद आते हैं और उसके अनुसार वर्तन करते हैं, ऐसा लिखा वह जाना, तो उस प्रकारका वर्तन विशेष विशेष रखने जैसा है।

जैसे बने वैसे, सत्पुरुषकी कही हुई पंक्तियाँ, उनके प्रवचन, वे रहते थे, वह पवित्र धाम, सत्संगमंडल, अच्छे सद्-वांचन, अच्छे सद्-विचार, उन सर्वकी बातें–उसमें मन स्थिर हो, वह लाभरूप और कल्याणरूप है।

बाकी जो होनेवाला है, वह हुआ ही करता है। बना हुआ प्रसंग याद आये, ऐसे आसपासके प्रसंग, व्यवहारिक लोगोंका आना-जाना आदि प्रसंग, वहाँ बनने संभव हैं, परंतु हृदयमें ज्यादा दुःख रखना नुकसानका कारण है और आत्माको अहितका कारण है— ऐसा सोचकर, अब इस महँगे मनुष्य जीवनमें आत्महित कैसे हो ? वह ही विचारने जैसा है। आयुष्यस्थिति क्षणिक है। जीवनमें कुछ किया होगा, वह ही अंततः शरणरूप है। सुख दूसरे पदार्थोंमें, सगे–स्नेहीजन और पुत्र-पुत्रीओंमें नहीं है, परंतु आत्मामें है। जहाँ सुख नहीं है, वहाँ सुख मान लिया जाता है, वही दुःखका कारण है।

वास्तविकता क्या है? सत् क्या है? हितरूप और कल्याणरूप क्या है?–वह समझने जैसा है।

जिसको आत्मा समझमें नहीं आता, सत् तत्त्व समझमें नहीं आता, उन्हें जिन्होंने सत् पाया है–ऐसे सत्पुरुषोंकी भक्ति, हृदयमेंसे भूलाने जैसी नहीं है। उनके कहे अनुसार, जैसे बने वैसे वांचन, विचार, बातचीत भी वह ही रहे, वह लाभरूप है।

श्रीमद् राजचंद्रका पुस्तक, आत्मानुशासन–वह सबको पढ़ने जैसा हैं। यहाँ श्रीमद् राजचंद्रका पुस्तक किस तरह पठन किया जाता था; वह लक्ष्यमें रखनेसे कुछ समझमें आएगा। श्रीमद् राजचंद्रका पुस्तक समझमें आये तो काफ़ी अच्छा है।

अच्छे परिणामसहित, जप-तपरूप सभी क्रियासे ऊँची गति और अशुभ परिणाम सहित अशुभ क्रियासे नीची गति। मोक्षस्वरूप आत्माका मोक्षमार्ग अलग है। वह बात भूलने जैसी नहीं है।

मन-वचन-कायाकी शुभ-अशुभ क्रियासे आत्मा साक्षात् अलग है। वह ज्ञानियोंकी अनुभवसिद्ध बात है।

सर्व जीव आत्मलाभ पाएँ–ऐसी भावना होनेसे, यह सब लिखा गया है। वहाँ सबको यथाशक्ति और यथाप्रकारसे आत्मलाभकी ओर संलग्नता जैसे बने वैसे हो ऐसी भावना है।

परम कृपालु श्री सद्गुरुदेव सुखशांतिमें विराजते हैं।

–श्री सत्पुरुषको नमस्कार

–बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन

*

गुरुदेव-स्तुति

(धन्यावतार पूज्य बहेनश्री चंपाबेनके अंतरमेंसे बही हुई भावभीगी भक्ति)

विदेहवासी कहानगुरु भरते पधार्या रे,
सुवर्णपुरीमां नित्ये चैतन्यरस वरस्या रे;
ऊजमबाने द्वार अति आनंद छवाया रे.
आवो पधारो मारा सद्गुरुदेवा;
शी शी करुं तुज चरणोंनी सेवा.
विधविध रत्नोना थाळ भरावुं रे,
विधविध भक्तिथी गुरुने वधावुं रे.....विदेह01.

दिव्य अचरजकारी गुरु अहो ! जाग्या;
प्रभावशाळी संत अजोड पधार्या.
वाणीनी बंसरीथी ब्रह्मांड डोले रे,
गुरु-गुणगीतो गगनमांही गाजे रे.....विदेह02.

श्रुतावतारी अहो ! गुरुजी अमारा;
अगणित जीवोनां अंतर ऊजाळ्यां.
सत्य धरमना आंबा रूडा रोप्या रे,
सातिशय गुणधारी गुरु गुणवंता रे.....विदेह03.

कामधेनु कल्पवृक्ष अहो ! फळियां;
भावी तणा भगवंत मुज मळिया.
अनुपम धर्मधोरी गुरु भगवंता रे,
निशदिन होजो तुज चरणोनी सेवा रे.....विदेह04.

निशदिन गुरुजीनी वाट अमे जोता;
अम अंतरियामां दर्शननी आशा.
सुवर्णे पधारो पुनः कृपाळुदेवा रे,
अनुभववाणी ने दर्शन देवा रे;
भवभव होजो गुरुचरणोनी सेवा रे.....विदेह05.

पत्रांक - ३२

वि.सं. १९९४,
(ई.स. १९३८, उ.व. २४)
आश्विन शुक्ला १०,
सोनगढ़

भाई श्री हिंमतभाई,

आपने एकाध सप्ताह वांकानेर जानेका लिखा, तो ठीक है, परंतु वहाँसे एकाध सप्ताहमें पुरुषार्थ करके तुरंत यहाँ आ जाना; क्योंकि आत्माको अभी सत्संगकी जरूरत है। गत समय वैशाख मासमें भी आप तुरंत नहीं आ सके, परंतु उत्सवके कारण आ गए थे। ५-६ महीना सुरतमें रहना, बाकीका ज्यादा समय बड़े भाईके (वजुभाईके) प्रेमभावके कारण वांकानेर रहना, उसका अर्थ सत्संगका समय एकदम कम रखना! परंतु आत्माको अभी सत्संगकी जरूरत है। अतः जरूर पुरुषार्थ करके आना।

लि.
बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन।

पत्रांक - ३३

वि.सं. १९९४,
(ई.स. १९३८, उ.व. २४)
सावन शुक्ला १०,
सोनगढ़

पूज्य बड़ी बहिन आदि,

आप सभी देशमें आओ तब यहाँ सोनगढ़ पूज्य महाराज साहिबका लाभ लेने आना। इस पंचमकालमें ऐसे सत्पुरुष दृष्टिगोचर होना भी दुर्लभ है, तो फिर उनकी वाणी, उनका अद्‌भुत और अपूर्व ज्ञान, सत्‌का समझना, दुर्लभ हो उसमें कुछ आश्चर्य नहीं। कोई आत्मार्थी जीव, जगतकी ओर दृष्टि नहीं देते–ऐसे सत्पुरुषोंका सत्संग करके आत्मलाभ पाते हैं।

महा क़ीमती मनुष्यजीवनमें कुछ भी सार्थकता हो तो भी अच्छा है। गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी आत्मलाभकी प्राप्ति हो सकती है।

लि.
बहिन चंपाके वंदन

●

पत्रांक - ३४

पूज्य बड़ी बहिनकी सेवामें,

.....सत्‌की ओर झुकाव, आत्मधर्मका झुकाव, उस ओरका विशेष रंग (भाव) रहे तो वह लाभरूप है....

लि. बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन

●

पत्रांक - ३५

वि.सं. १९९४, (ई.स. १९३८, उ.व. २४)
सावन शुक्ला १०, सोनगढ़

पूज्य बड़ी बहिन और बहनोई,

परम पूज्य कृपालु साहेब सुखशान्तिमें बिराजते हैं। वहाँ आप सभी वांचन, भक्ति आदि करते होंगे।

इस समय (आपका) सोनगढ़में ज्यादा निवास हो सका उससे वस्तुस्वरूपके यथार्थ दाता ऐसे पूज्य साहिबके प्रवचन आदिका अच्छा लाभ मिला। यहाँका समयसारजीका महोत्सव, भक्ति, पूज्य साहेबका अद्‌भुत उपदेश आदिका स्मरण करो तो भी लाभका कारण होगा। कंचन और शारदा आनंदमें होंगे।

'आत्मसिद्धि' सीखने जैसी है, विचारने जैसी है, समझने जैसी है।

लि. बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन

●

पत्रांक - ३६

पूज्य बड़ी बहन और बहनोई,

बहिन चंदुका पत्र मिला था। परम पूज्य कृपालु गुरुसाहेब सुखशांतिमें बिराजते हैं। गिरनारकी यात्रा कोई अपूर्व हुई थी। कृपालु साहिब राजकोटसे विहार करके–गोंडल, जेतपुर, अमरेली, लाठी आदि बहुतसे गाँवोंमें विहार करके, बहुतसे जीवोंको अपूर्व लाभ देकर–यहाँ सोनगढ़में बिराजते हैं, अद्‌भुत लाभ दे रहे हैं।

बहिन चंद्रमणिका पत्र था। लिखा था कि बहिन कंचनको भक्तिका रंग (प्रेम) अच्छा है, तो वह रंग और रुचि बढ़ाने जैसा है।

मनुष्यजीवनमें करने जैसा तो वास्तवमें आत्माका ही है।

शारदाको भी ऐसे संस्कार पड़े तो अच्छा है।

यहाँ यह शरीरका स्वास्थ्य अच्छा है। वहाँ सभीका स्वास्थ्य अच्छा होगा। मगनलालके शरीरमें वातका रोग आया है, अशाताके उदयके समय शांति रखना।

लि.

बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन

पत्रांक - ३७

पूज्य बड़ी बहिन एवं बहनोई आदि,

संसार असार है। सारभूत आत्मपदार्थ है। सद्गुरु और सत्संगके साधन आदरणीय हैं।

परम पूज्य साहिब सुखशांतिमें बिराजते हैं।

कंचन तथा शारदा आनंदमें होंगे, 'आत्मसिद्धि' सीखते होंगे।

लि.

बहिन चंपाके यथायोग्य वंदन।

पत्रांक - ३८

(वि.सं. १९९५, ई.स. १९३९ उ. व. २५)

सोनगढ़

भाईश्री हिंमतभाई,

आपका पहलेका लिखा हुआ पत्र मिला था एवं समयसारकी कॉपी और पत्र आदि सर्व कल संध्याके समय मिले। समयसारकी

कॉपी तुरंत परमकृपालु साहेबको पहुँचाई है एवं दोनों पत्र भी पढ़ने भेजे हैं। माननीय रामजीभाई यहाँ थे, अतः उन्होंने भी अनुवाद पढ़ा है। परम कृपालु साहेब एवं रामजीभाईने अनुवादकी प्रशंसा की–ऐसा सुना है। समयसारके विषयमें आपने पत्रमें लिखा हुआ विस्तृत वर्णन वह सब मिलाकर एवं पूरी कॉपी मिलाकर–कृपालु साहेब क्या कहते हैं? वह पीछे लिखूँगी।

पुष कृष्णा दशमीको यहाँसे परम कृपालु साहेबके साथ सर्व भाई-बहन संघ सहित पालीताणा जानेवाले हैं। बहिनोंको भी साथ चलनेकी स्वीकृति मिली है। वहाँसे आनेके पश्चात् कृपालु साहेब राजकोटकी ओर विहार करेंगे। चातुर्मास यहाँ करेंगे ऐसा अभी लगता है।

परम पूज्य कृपालु साहेबका अभिप्राय ऐसा है कि–जिस तरह समझमें आए उस तरह 'अनंत व्यक्ति'का स्पष्टीकरण, कौंसमें भी स्पष्ट होना चाहिए। कृपालु साहेबके प्रभावना–उदयको, तो आप जानते हो कि–दूसरोंको समझानेका उनको कितना उदय वर्त रहा है।

संस्कृतके कठिन शब्द आए उसका, अंतमें कौंस (bracket)में भी, जिस तरह समझमें आ सके ऐसे स्पष्टीकरण करना, नहीं समझमें आए तो ना लिखना कि, मुझे नहीं आता है; सद्गुरुके उदयानुसार करना (bracket) कौंस बढ़े तो बढ़ने देना। जैसी होनी होगी वैसा होगा।

लि.

बहिन चंपाके यथायोग्य

पत्रांक - ३६

वि.सं. १९९५
(ई.स. १९३९) उ.व. २५
सोनगढ

भाईश्री हिंमतभाई,

इसके साथ समयसारके अनुवादकी कॉपी तथा उसमें भाई अमृतलालने लिखी हुई संशोधनकी सूचनावाला पत्र है, वह पढ़ लेना; वह पढ़कर विचारपूर्वक आपको जो योग्य लगे उसके अनुसार सुधारना। वह पूरा पत्र पूज्य साहेबने पढ़ा नहीं है। कृपालु साहेबने थोड़ा अनुवाद देखकर दूसरा अनुवाद भाई अमृतलालको देखने सौंप दिया था। भाई अमृतलालने पत्रमें कतिपय पूज्य साहेबके अभिप्रायानुसार लिखा है, कुछ अमृतलालका स्वयं लिखा हुआ है।

आपका अनुवाद अच्छा है। कृपालु साहेबने एवं रामजीभाईने भाषाकी रचना आदिकी सराहना की थी; भाव भी अच्छे थे, किसी जगह अर्थका संशोधन भी अच्छा किया है। कृपालु साहेब कहते थे कि, 'हिम्मतभाईने जो किया होगा वह, विचार कर ही किया होगा'–आदि कहते थे, परंतु कृपालु साहेबका अभिप्राय इस तरह खास रहता है कि, हिन्दी अनुवादमें संस्कृत टीकाके शब्द जो रह गए हो वह तथा हिन्दी अनुवादमें जो विरोधवाले अर्थ हो उसको यथार्थ तरीकेसे लिखना। बाकी बिना प्रयोजन, भाव न बदलता हो तो, वाक्यपंक्तिकी रचना बदलना नहीं, कोई भी पंक्तियाँ छोड़ नहीं देना, बिना कारण जोड़ना भी नहीं। सद्गुरु कृपालु साहेबकी इच्छा हो उसी तरह अनुवाद करना।

'शिव-भूप'के बदले 'सहु-भूप' अर्थ ज्यादा अच्छा लगता है। सवैयाके विषयमें आपको जैसा ठीक लगे ऐसा करना–ऐसा कृपालु साहेबने कहा है।

इस बार यह प्रथम कॉपी थी, अतः बहुत देखा है। यह कॉपी सुधारकर आनेके बाद तुरंत अब छापने दी जाएगी; अब कुछ सुधार नहीं होगा। इसके बाद जो दूसरी कॉपी आए वह थोड़ी बहुत देखकर छापने दे देना–ऐसा पूज्य साहेब हालमें कहते थे। वही—

श्री वीतरागको नमस्कार

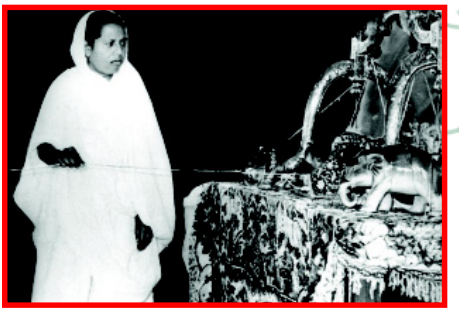

पत्रांक - ४०

वि.सं. १९९६
(ई.स. १९४०, उ.व. २६)
सोनगढ

पूज्य आदरणीय बहिन एवं बहनोई,

परम पूज्य कृपालु साहेब, राजकोटसे विहार करनेके पश्चात् गाँव-गाँव विहार करते हुए, बहुत जीवोंको अपूर्व लाभ देते हुए, प्रायः एक सप्ताह पहले सोनगढ़ पहुँच गए हैं।

हम भी सोनगढ़ क्षेत्रमें हैं। बहिन चंदु वर्तमानमें करांची है -ऐसा सुना है। यहाँ इस शरीरका स्वास्थ्य अच्छा है। मनुष्यजीवनमें आत्मार्थिता प्रकट हो तो मनुष्यजन्म कुछ अंशमें सफल गिना जाए....

पत्रांक - ४१

सोनगढ़, वि.सं. १९९७
(ई.स. १९४०, उ.व. २७)
मार्गशीर्ष शुक्ल प्रथमा, शनिवार

पूज्य आदरणीय बहिन और बहिनोई आदि,

श्री समयसारजी शास्त्रका गुजराती अनुवाद संपूर्ण होनेसे, कार्तिकी पूर्णिमाके दिन उत्सवपूर्वक प्रकाशन किया है। कुछ पुस्तकोंकी जिल्द (binding) बंधी है, दूसरी जिल्द बंध रही है। आपने भेजे हुए पैसोमेंसे, बीस पुस्तक होंगे। एक पुस्तकका मूल्य ढाई रुपया है। आपको कितने पुस्तककी आवश्यकता है, वह जानकारी देना, क्योंकि ऐसा महाशास्त्र खास योग्य जीवोंको देना। जहाँ-तहाँ यह पुस्तक मुफ्त देनेसे उलटा दुरूपयोगका कारण हो और उलटी असातनाका कारण होगा। अतः यह पुस्तक खास योग्य बहुमानवाले हो, उसे देना; जहाँ-तहाँ मुफ्त नहीं देना। इसलिए आपको कितने पुस्तकोंकी आवश्यकता है, वह लिखना, बाकीके पुस्तक स्वाध्यायमंदिरमें रखनेका ख्याल आवे। समयसार पुस्तक अति विचारपूर्वक, आत्मार्थितापूर्वक, बहुत भक्तिभावपूर्वक पढ़ने जैसा है। गुजराती हरिगीतवाली गाथा भी उसमें आएगी। वहाँ सभीको वांचन, विचार और भक्ति करनेयोग्य है।

लि. बहिन चंपाके
यथायोग्य वंदन

पत्रांक - ४२

वि.सं. १९९७
(ई.स. १९४१,उ.व. २७)
सोनगढ़

बहिन चंद्रमणि,

प्रभाबेनके साथ भेजा हुआ पत्र मिला था।

समयसार पुस्तक छपकर प्रसिद्ध हो गए हैं। श्री जगजीवनदास यहाँ सोनगढ़ आए थे। समयसार पुस्तक यहाँसे खरीदकर गए हैं। भाव अच्छे थे। दूसरी कोई विशेष बातचीत नहीं हुई है।

तुम्हें, वहाँ सत्संग है–ऐसा विचारकर शांति रखना है। छूटनेकी उतावली होती हो तो विचारना। जगजीवनदास और वे सब लोग तुम्हें छोड़ेंगे? या कैसे क्या(होगा)? क्योंकि बोले तो सही, परंतु छूटनेके समय छोड़ना बहुत मुश्किल है। संसारी मनुष्योंको प्रतिष्ठाका प्रश्न उठता है। इसलिए बहुत विचारने जैसा है। शांति रखना, भावना भाना; अनुकूल-प्रतिकूल संयोगोको समभावसे सहन करना; आत्मभावना बढ़ाना; जितना सत्संग मिलता है, उतनेमें शांति रखकर आगे बढ़ना; किसीका महल देखकर अपनी झोंपड़ीको जलाया नहीं जाता।

बहिन आदि करांचीसे देशमें कब आएँगे, उसकी कोई खबर नहीं है। बहिन कंचन लिखती थी कि, ''देरासर (मंदिर) की नींव

ड़ाली होगी', उस परसे लगता है कि, कदाचित् देशमें आनेका विचार होगा।

भावना भाना। दर्शन करनेका योग कभी बन जाएगा; तब हृदयमें कुछ शांति होगी।

पूज्य कृपालु साहेबके हस्ताक्षरकी एवं उनकी तसवीरकी अलग कॉपी यहाँ मिलती है। यह ही—

–सर्वज्ञ वीतराग आदि सत्पुरुषोंको नमस्कार

*

पत्रांक - ४३

(वि.सं. १९९६,
ई.स. १९४३,
उम्र वर्ष : २९)
सोनगढ़

भाई हिम्मतभाई,

आपका पत्र संध्याको मिला; प्रातःकालमें पूज्य गुरुदेवश्री विहार करनेवाले थे। जिससे रामजीभाई आदिसे खास कुछ बात नहीं हो सकी। पूज्य गुरुसाहिबने बृहस्पतिवार, फाल्गुन शुक्ला पंचमीको सुबह, प्रभावना-उदयका विकल्प आनेसे, सुवर्णपुरीसे विहार किया है। अभी उमराला गाँवमें बिराजते हैं।

आत्मसिद्धिके प्रवचनकी प्रस्तावनामें परम उपकारी गुरु साहिबका जीवन चरित्र ड़ाला जा सके तो अच्छा–ऐसे हमारे भाव हैं। दूसरे किसीको–रामजीभाईको पूछ नहीं सकी हूँ, फिर भी लिखकर भेजोगे तो उसमें दिक्कत नहीं है। पूर्वका लिखा हुआ जीवनचरित्र यहाँ रखा है, वह इस पत्रके साथ भेज रही हूँ। उसमें कुछ वजुभाईका लिखा हुआ है। वह जीवन-चरित्र दो–तीन वर्ष पूर्वका है, अतः अपूर्ण है। इसलिए शुरुसे अभी तकका जीवनचरित्र लिखा जाए ऐसा करना। यह जीवनचरित्र भेजा है, उसमें आपको ठीक लगे ऐसा लेना।

श्री प्रवचनसारकी टीकाके (-अनुवाद) विषयमें परमकृपालु गुरुसाहिब बारबार कहते हैं कि–'श्री प्रवचनसारकी टीका करे तो हिंमतभाई, दूसरा कोई नहीं।' श्री प्रवचनसारकी टीका करनेके विषयमें एक कोई पंडितका पत्र आया था। पूज्य साहिबने कहा कि, ''करे तो 'हिंमतभाई', दूसरा कोई नहीं''। पुनश्च, किसी-किसीको पूज्य साहिब कहा करते हैं कि, 'प्रवचनसारका अनुवाद होनेवाला है'। कोई ऐसा समझ लेते हैं कि, 'प्रवचनसारका अनुवाद हो रहा है' अतः समाचारोंमें ऐसा आया कि, 'श्री प्रवचनसारका अनुवाद हो रहा है'। अतः इस विषयमें उत्साहसह लक्ष्य देने योग्य है।

आपने सुरत आनेके विषयमें लिखा, परंतु हाल, यहाँ सोनगढ़में रहनेका विचार है। पूज्य साहिब जहाँ विराजते होंगे वहाँ, कभी-कभी दर्शन करने जाएँगे और बाकी समय यहाँ रहेंगे–ऐसा विचार है।

लि.

बहिन चंपाके यथायोग्य

प्रशममूर्ति बहिनश्री चंपाबेनने लिखकर भेजे हुए

परमोपकारी पूज्य सद्गुरुदेवश्री कानजीस्वामी द्वारा पूछे हुए

तात्त्विक प्रश्नोंके उत्तर

पूज्य सद्गुरुदेवश्रीने वि.सं. १९९३ (ई.स. १९३७, उ.व. २३)में पूछे पाँच तात्त्विक प्रश्नोंके बहिनश्री चंपाबेन द्वारा लिखकर भेजे गए उत्तर।

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनने वि.सं.१९८९ (ई.स. १९३३)में सम्यग्दर्शन व आत्मानुभूति प्राप्त की, उसके पश्चात्, परम पूज्य गुरुदेवश्री तत्त्वज्ञान और आत्मानुभूति आदि सम्बन्धित मौखिक प्रश्न कभी-कभी पूछते थे और बहिनश्री उनका मौखिक उत्तर देती थीं। जो सुनकर पूज्य गुरुदेवश्रीको पूर्णतया संतोष और प्रमोद होता था। यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे, ये पाँच प्रश्न तो पूज्य सद्गुरुदेवश्रीने खास स्वहस्तसे लिखकर भेजे थे और उसके उत्तर भी लिखित मांगे थे। जब बहुत शास्त्र पढ़े भी नहीं थे, ऐसी छोटी उम्रमें अपने तत्त्वविचार तथा अनुभवके बलसे पूज्य बहिनश्री चंपाबेन द्वारा दिये गए उत्तर।

पूज्य गुरुदेवश्रीके स्वहस्ताक्षरमें लिखे हुए प्रश्नोंके, पूज्य बहिनश्री द्वारा दिये गये उत्तर, मुमुक्षुजीवोंके लाभका कारण जानकर, यहाँ संकलित किए गये है, वे प्रश्न एवं उत्तर पढकर आत्मार्थी जीव अवश्य लाभान्वित होंगे।

पूज्य सद्‌गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने (स्वहस्ताक्षरमें) पूछे हुए

पांच तात्त्विक प्रश्न

ॐ

સહજ ચિદાનંદ

અગુરુ લઘુની વ્યાખ્યા શી રીતે કરી
શકો છો;

જ્ઞાન સવિકલ્પ છે તો અનુભવ નિર્વિ
સવીકલ્પ કઈ રીતે છે તેની ઘટના કઈ રીતે છે?

સર્વજ્ઞની વ્યાખ્યા તમારી ભાષાથી
કેવી રીતે થઈ શકાય છે.

બૌદ્ધ વેદાંતાદિ કરતાં જૈનનું જુદાપણું
મુખ્ય મુદ્દા સહીત શું માન્યતામાં છે.

આત્મ આનંદ અને નિર્વિકલ્પતામાં
ભેદ અથવા કાળનું આંતરૂ શું છે,

તે પ્રશ્ન વાંચી તરત જવાબ આવે તે
લખવા,
સર્વોત્કૃષ્ટ પણ તમારી ભાષાથી કઈ
રીતે કરો છો,
બન્ને એ જુદું જુદું લખવું.

પરમ કૃપાળુ શ્રી સદ્ગુરુદેવ (કાનજી મહારાજશ્રી
ના પરમ પવિત્ર હસ્તાક્ષરી
શ્રી ગુરુદેવના પૂછેલા સુંદર પ્રશ્નો

अध्यात्ममूर्ति युगस्त्रष्टा परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने पूछे हुए

पाँच तात्त्विक प्रश्न

ॐ

सहज चिदानंद

प्रश्न-१ : अगुरुलघुकी व्याख्या किस तरह कर सकते हो?

प्रश्न-२ : ज्ञान सविकल्प है, तो अनुभवके समय सविकल्प किस प्रकारसे है? उसकी घटना किस प्रकारसे है?

प्रश्न-३ : सर्वज्ञकी व्याख्या, आपकी भाषासे किस तरह हो सकती है?

प्रश्न-४ : मान्यतामें दूसरे वेदान्तादिसे मुख्य विषय सहित 'जिन'(मत)का भिन्नपना कैसे है? (पूज्य गुरुदेवश्रीने वेदान्तकी तुलनामें 'जिन'(मत)का भिन्नपना पूछा था)

प्रश्न-५ : आत्म आनंद और निर्विकल्पतामें भेद या कालका अंतर क्या है?

यह प्रश्न पढ़कर तुरंत जो जवाब आये वह लिखना।

सर्वोत्कृष्टरूपसे अपनी भाषामें कैसे लिखते हो?

दोनों अलग अलग लिखें!

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीने लिखकर भेजे हुए

पाँच तात्त्विक प्रश्नोंके

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन द्वारा लिखकर भेजे गये

उत्तर

प्रश्न पढ़कर गुरुदेवकी आज्ञा अनुसार तुरंत ही सबसे प्रथम यह प्रश्नका उत्तर लिखा गया है।

(पूज्य गुरुदेवने 'आत्म आनंद तथा निर्विकल्पतामें भेद अथवा कालके अंतरके' बारेमें पूछे गये प्रश्नका उत्तर)

प्रश्न-५ : आत्म आनंद और निर्विकल्पतामें भेद या कालका अंतर कैसे है?

उत्तर-५ : निर्विकल्पता, निर्विकल्पस्वभावसे वेदनमें आती है और आत्म-आनंद, आनंदस्वभावरूप वेदनमें आता है, इसलिए दोनोंमें भेद है। आत्मा एकरूप अभेद है। जिस क्षणमें निर्विकल्पता प्रकटती है, उस ही क्षण, आत्म आनंद प्रकटता है। इसलिए दोनोंमें कालका अन्तर नहीं है; अतः दोनों एकरूप अभेद है।

●

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'अगुरुलघु'के बारेमें पूछे गये प्रश्नका उत्तर)

प्रश्न-१ : अगुरुलघुकी व्याख्या किस तरह कर सकते हो?

उत्तर-१ : शुद्ध परिणामसे परिणमित द्रव्यके अगुरुलघु-स्वभावके विषयमें–ऐसा समझमें आता है कि, अपने स्वभावसे बाहर नहीं जाकर, स्वरूपमें रहकर, द्रव्यके अनंत स्वभावोंमें, किसी

स्वभावमें, अन्य स्वभावकी अपेक्षा (न्यूनाधिक्यरूप) एवं एक स्वभावके एक अंशमें, सहज स्वभावसे न्यूनाधिक्यरूप, सहज परिणमनके कारण किसी गुणकी विशेषता, किसीकी हीनता तथा गुणके किसी अंशकी हीनता, किसीकी विशेषतारूप द्रव्य परिणमित होनेसे, परिणमन बढ़ जानेसे, गुण बढ़ गया दीखता है, अंश बढ़ गए दीखते हैं। परिणमन घट जानेके कारण अंश घट गए दीखते हैं। परिणमनस्वभाव कोई अद्‌भुत है। गुण, पर्याय सर्व अभेद हैं। हीनाधिकतारूप परिणमना वह द्रव्यका सहज स्वभाव है। विभावपरिणामी द्रव्यके परिणमनकी हीनाधिकता, पर निमित्तके कारण होती है। उपादानरूपसे तो स्वयं स्वतंत्र परिणमता है।

अगुरुलघुस्वभाव न्यायकी पद्धतिसे पूरा नहीं आता; स्पष्टरूप नहीं आता, फिर भी जिस तरह यथाशक्ति आया, उस रूपसे लिखा है।

●

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'अनुभवके कालमें ज्ञानकी सविकल्पता' बारेमें पूछे हुए प्रश्नका उत्तर)

प्रश्न-२ : ज्ञान सविकल्प है, तो अनुभवके समय सविकल्प किस प्रकारसे है? उसकी घटना किस प्रकारसे है?

उत्तर-२ : निर्विकल्पताके समय, चैतन्यद्रव्यके भिन्न-भिन्न स्वभावोंसे, केलीस्वरूप–तरंग उछल रहे हैं; उसका वेदन, उसको जानना, वह ज्ञानकी सविकल्पता है।

अनुभवके समय, द्रव्यका भिन्न-भिन्न स्वभावसे क्रियात्मकपना और अलग-अलग प्रकारसे क्रियात्मकपना, उस परिणमनका ज्ञानमें, सहज निर्विकल्परूप वेदन, वह ज्ञानकी सविकल्पता समझमें आती है। एकरूप, अनेकताका वेदन होने पर भी, अनेकताका वेदन वह ज्ञानकी सविकल्पता है। उस अनेकताका

वेदन ज्ञान द्वारा जाना जाता है, वह ज्ञानकी सविकल्परूपता है। भेदरूप विशेष पर्यायको जाननेवाला ज्ञान है। निश्चयसे द्रव्यपिंड अभेदस्वरूप परिणमता है, फिर भी व्यवहारसे भेद अवस्थारूप परिणमता है।

●

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'सर्वज्ञकी व्याख्या'के बारेमें पूछे हुए प्रश्नका उत्तर)

प्रश्न-३ : सर्वज्ञकी व्याख्या, आपकी भाषासे किस तरह हो सकती है?

उत्तर-३ : स्वपरप्रकाशक स्वभाववाला ज्ञान, अपनी संपूर्ण तंरगरूप पर्यायमें सहज परिणमनकर, स्वस्वभावमें प्राकृतिक तथा प्रकृतिके अनुरूप परिणमता है, उसका नाम सर्वज्ञता।

बाह्यसे परज्ञेयोंको जानने पर भी, अभ्यंतरमें अपनी ही ज्ञानतरंगरूप पर्यायमें परिणमन करता है। प्राकृतिक ज्ञाता स्वयं स्वभावके अनुरूप परिमणता है। 'बाह्य प्राकृतिक अन्य द्रव्य'; 'अभ्यंतर प्राकृतिक स्वयं', संपूर्ण पर्यायमें प्रकट परिणमता है। जहाँ कोई अंश अपूर्ण नहीं है, जहाँ स्वलक्ष्य पूर्ण हो गया है। स्वलक्ष्य (स्व-उपयोग) पूर्ण परिणमित होकर, ज्ञानका स्वपर ज्ञायकरूप पूर्ण परिणमना, उसका नाम सर्वज्ञता है।

●

(पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा 'वेदांतसे जैनका अलगपना'के बारेमें पूछे हुए प्रश्नका उत्तर)

प्रश्न-४ : मान्यतामें दूसरे वेदान्तादिसे मुख्य विषय सहित 'जिन'(मत)का भिन्नपना कैसे है? *(पूज्य गुरुदेवश्रीने वेदान्तकी तुलनामें 'जिन'मतका भिन्नपना पूछा था)*

उत्तर-४ : वेदान्त अकेली शुद्धता और अभेदताको मानता है;

जिससे अखंड स्वभावका ग्रहण नहीं होता है। विभाव परिणामीपना सर्वथा नहीं स्वीकारनेसे, स्वभावमें आनेका प्रयत्न नहीं रहता है।

वेदान्ती एकान्त शुद्धताको मानता होनेसे, रत्नत्रय परिणतिको नहीं स्वीकारता; अन्तरकी साधकदशा उसे प्रकट नहीं होती। एकांत शुद्धता स्वीकार करता होनेसे, अन्य पहलूकी अशुद्ध परिणतिको सर्वथा नहीं स्वीकारता।

वेदान्त और जैनका मुख्य (विषय) भेद—

वेदान्त एकान्तसे अभेदता और शुद्धताको मानता है। वह यथार्थ नहीं है। जैन किसी अपेक्षासे, भेद व अशुद्धताकी मान्यताको अपेक्षा सहित, अभेद दृष्टि एवं शुद्ध द्रव्यदृष्टिको स्वीकारता है। उसमें शुद्ध दृष्टिकी मुख्यता वह यथार्थ है; जिससे यथार्थ स्वानुभूति होती है। चैतन्यका अनुपम स्वरूप प्रकट होता है।

वेदान्तकी मानी हुई एकान्त शुद्धता, वह यथार्थ नहीं है। उसकी मानी हुई एकान्त अभेदता, वह यथार्थ नहीं है। स्व और पर –ऐसे दो द्रव्य होने पर भी 'जगतमें दूसरे द्रव्य ही नहीं हैं' ऐसी उनकी मान्यता है। पर्यायरूप भेददृष्टिको, वे स्वीकारते नहीं है, अथवा द्रव्यका परिणमन स्वभाव होने पर भी, वे स्वीकार नहीं करते हैं।

यथार्थ ज्ञान हो तो ही भेदज्ञान और शुद्ध परिणति प्रकटती है।

पर्यायको (वेदांत) नहीं स्वीकारनेसे, द्रव्यके अखंड स्वभावका ग्रहण नहीं होता है; द्रव्य और पर्याय—दोनों पहलूका ग्रहण नहीं होता है; जिससे उसकी मानी हुई, एकान्त शुद्धता भी सत्य साबित नहीं होती है।

चैतन्यकी वेदनपरिणतिकी अपेक्षा ली जाय तो, चैतन्यकी ज्ञानरूप वेदनपरिणतिमें, द्वैतपना और अशुद्धता उपस्थित होने पर भी, वेदान्त उसका स्वीकार नहीं करता, (परंतु) अकेली शुद्धता एवं अद्वैतपना स्वीकारता है।

जैनमें और वेदान्तमें द्वैतपना–अद्वैतपना और शुद्धता-अशुद्धता आदिमें मुख्य भेद हैं। वस्तुस्थिति जैसी है वैसी है। यथार्थ दृष्टि हुए बिना अनुभूति भी यथार्थ नहीं हो सकती।

वेदान्त परद्रव्यमें व्यापकपना मानता है। जैन परद्रव्यका ज्ञान अपना मानता है, परंतु परद्रव्यमें व्यापकपना नहीं मानता है। दोनों द्रव्यदृष्टिसे एक जैसे दीखतें हैं–ऐसा कहा जा सकता है, व्यवहारदृष्टिसे अलग पड़ते हैं। जिससे सभी पहलूका निषेध होता है। साधकस्थिति–साध्य, द्रव्य-पर्याय, ज्ञान-ज्ञेय, निमित्त-नैमित्तिक, शुद्धता-अशुद्धता आदि सर्वका निषेध होता है।

यथार्थ साधनामें, शुद्ध द्रव्यदृष्टिकी मुख्यतापूर्वक पर्यायका ज्ञान साथमें रहता है, अतः शुद्ध पर्याय प्रकट होती है।

ज्ञान अतिगंभीर है। यथाशक्ति लिखा गया है। द्रव्य और भावसे संपूर्ण सहज स्थिति ही चाहिए। यह ही भावना है। सहजमें, सहज पूर्ण परिणमित हो जाए, यह ही भावना है।

वीतराग स्वरूपको नमस्कार। श्री सत्पुरुषोंको नमस्कार।

परम उपकारी ज्ञाननिधि कहान-गुरुदेवके चरणोंमें नमस्कार।

विशेष – ८

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनने पूज्य गुरुदेवश्रीको बताई हुई

अपनी अन्तरंगदशा

(लगभग वि.सं. १९९२; ई.स. १९३६)

परम कृपालु प्रभुश्री,

मेरी अन्तरंग-दशा सम्बन्धित आपको बतानेके भाव होनेसे लिखा जा रहा है। आप मेरी अन्तरंग-दशा जानें, उसमें इस आत्माको विशेष लाभ रहा है, अतः लिखा जा रहा है।

एक ओरसे देखते, विचारते, ऐसा होता है कि, मेरी अन्तरंगदशा अन्य कोई जाने, वह मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता है और दूसरी ओरसे विचारने पर ऐसा होता है कि, गुरुदेव (इसे) जाने उसमें इस आत्माका विशेष लाभ रहा है, अतः लिखा जा रहा है। इस अन्तरंगदशामें आपका प्रताप है, आपका उपकार है।

गुरुदेव! ज्ञाताधाराकी उग्रता वर्तती रहती है। वाँचन आदिकी ओर उपयोग जाता है, उस अनुसार वह कार्य यथाशक्ति हुआ करता है और ज्ञाताकी ओरका ध्यान व ज्ञाताकी ओरकी उग्रता रहा करे ऐसी परिणति वर्तती रहती है।

प्रभु! (गु.) श्रावण कृष्णा अमावस्यासे, इस आत्माकी कोई सहज एक धारावाही दशा प्रकट हुई है, कोई अद्‌भुतदशा प्रकट हुई है। अन्तरंगमें बहुत उल्लास आता है तथा अन्तर आत्माकी निर्विकल्प-दशा, आनंद-दशा, विशेष सहजताको और विशेषताको प्राप्त हुई है। यह आपका प्रताप है। मात्र (आपकी) जानकारीके लिए लिखा है। अन्तरंगमें बहुत उल्लास आनेसे, लिखा जा रहा है। चारित्रकी साधना अभी बाकी है, फिर भी लिखी जाती है।

गुरुदेवसे दूर रहते हैं, उसका खेद रहता है। यद्यपि ज्ञाता प्रभु चैतन्यमें खेद नहीं। जो होता है, वह दिखता है, फिर भी उदयरूप खेद आ जाता है। बहुत दिन हुए, कहनेके भाव होते थे। आज भावना बढ़ जानेसे लिखनेके भाव हो गये हैं।

गुरुदेव जाने, उसमें इस आत्माका लाभ रहा हुआ है, अतः बताया जा रहा है।

इस आत्माकी दशामें आपका परम प्रताप है, परम उपकार है।

अन्तरंगदशा सम्बन्धित और शास्त्रों सम्बन्धित आपके प्रश्न, इस आत्माको लाभदायक हैं।

विशेष - ६

पूज्य बहिनश्रीकी व्यक्तिगत टिप्पणी

वि.सं. १९९२ (ई.स. १९३६)

उम्र २२ वर्ष

श्री सद्गुरुदेवको नमस्कार

केवलज्ञान होनेके पश्चात्–'आत्मस्वभावके' पूर्ण परिणमन पश्चात्–केवली ऊपर आकाशमें चले उसका कारण, यह समझमें आता है कि, आत्मद्रव्यका परिणमन कुदरतके साथ पूर्ण परिणमित होनेसे, कृत्रिमता छूट जाती है। द्रव्य स्वयं स्वाधाररूपसे परिणमित हो रहा होनेसे, उसे बाह्यसे भी परावलंबन छूट जाता है। सहज स्वभाव जो आकाशद्रव्यके साथ निमित्तनैमित्तिकसंबंध वह रह जाता है। (वर्तमानमें) जमीनका आश्रय (जो है), वह सहज नहीं है, परंतु कृत्रिम है।

परम पूज्य गुरुदेवश्री तथा उनकी सातिशय वाणीका

उपकार और महिमा

(पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके स्वहस्ताक्षरमें)

हस्ताक्षर-1

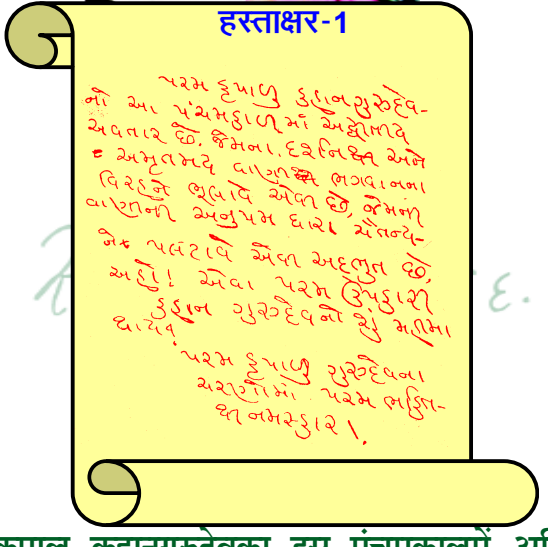

परमकृपालु कहानगुरुदेवका इस पंचमकालमें अद्वितीय अवतार है। जिनके दर्शन और अमृतमय वाणी भगवानके विरहको भूलाए ऐसी है, उनकी वाणीकी अनुपमधारा चैतन्यको पलटाए, ऐसी अद्‌भुत है, अहो! ऐसे परम उपकारी कहानगुरुदेवकी क्या महिमा हो?

परमकृपालु गुरुदेवके चरणोंमें परमभक्तिसे नमस्कार।

हस्ताक्षर-2

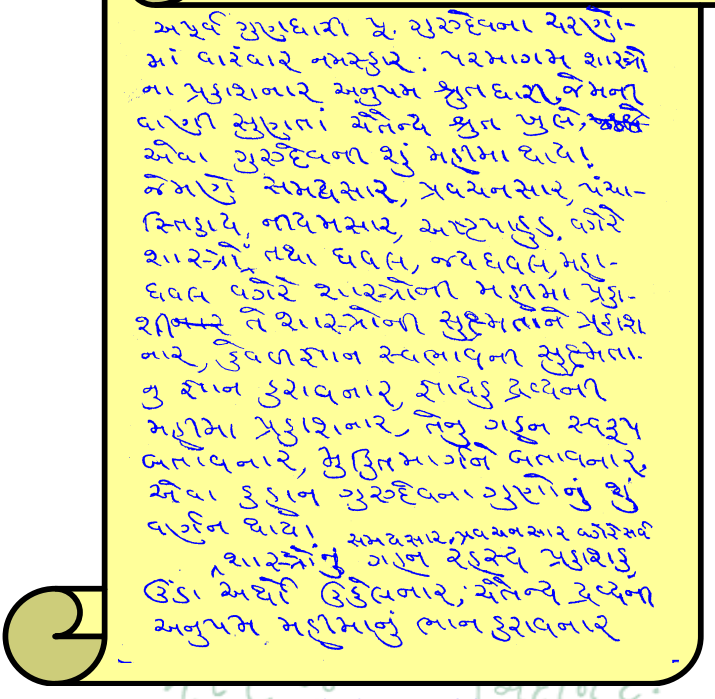

અપૂર્વ ગુણધારી પૂ. ગુરુદેવના ચરણોમાં વારંવાર નમસ્કાર. પરમાગમ શાસ્ત્રોના પ્રકાશનાર અનુપમ શ્રુતધારી, જેમની વાણી સુનતાં ચૈતન્ય શ્રુત ખુલે, એવા ગુરુદેવની શું મહિમા ઘટે!

જેમણે સમયસાર, પ્રવચનસાર, પંચાસ્તિકાય, નિયમસાર, અષ્ટપાહુડ વગેરે શાસ્ત્રો તથા ધવલ, જયધવલ, મહાધવલ વગેરે શાસ્ત્રોની મહિમા પ્રકાશિત કરીને તે શાસ્ત્રોની સૂક્ષ્મતાને પ્રકાશનાર, કેવળજ્ઞાન સ્વભાવની સૂક્ષ્મતા જ્ઞાન કરાવનાર, જ્ઞાયકદ્રવ્યની મહિમા પ્રકાશનાર, તેનું ગહન સ્વરૂપ બતાવનાર, મુક્તિમાર્ગને બતાવનાર એવા કહાન ગુરુદેવના ગુણોનું શું વર્ણન થાય! સમયસાર, પ્રવચનસાર વગેરે શાસ્ત્રોનું ગહન રહસ્ય પ્રકાશક, ઊંડા અર્થો ઉકેલનાર, ચૈતન્ય દ્રવ્યના અનુપમ મહિમાનું ભાન કરાવનાર

अपूर्व गुणधारी पूज्य गुरुदेवके चरणोंमें बारम्बार नमस्कार। परमागम शास्त्रोंको प्रकाशित करनेवाले अनुपम श्रुतधारी, जिनकी वाणी सुनते चैतन्य श्रुत खुलता है, ऐसे गुरुदेवकी क्या महिमा हो!

जिन्होंने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि शास्त्रों तथा धवल, जयधवल, महाधवल इत्यादि शास्त्रोंकी महिमा प्रकाशित करके उन शास्त्रोंकी सूक्ष्मताको प्रकाशित करनेवाले, केवलज्ञान स्वभावकी सूक्ष्मताका ज्ञान करानेवाले, ज्ञायकद्रव्यकी महिमा प्रकाशित करनेवाले, उनका गहन स्वरूप बतानेवाले, मुक्तिमार्गको बतानेवाले ऐसे कहानगुरुदेवके गुणोंका क्या वर्णन हो!

समयसार, प्रवचनसार आदि सर्व शास्त्रोंके गहन रहस्य प्रकाशक, गहरे अर्थ खोलनेवाले, चैतन्यद्रव्यकी अनुपम महिमाका भान करानेवाले,

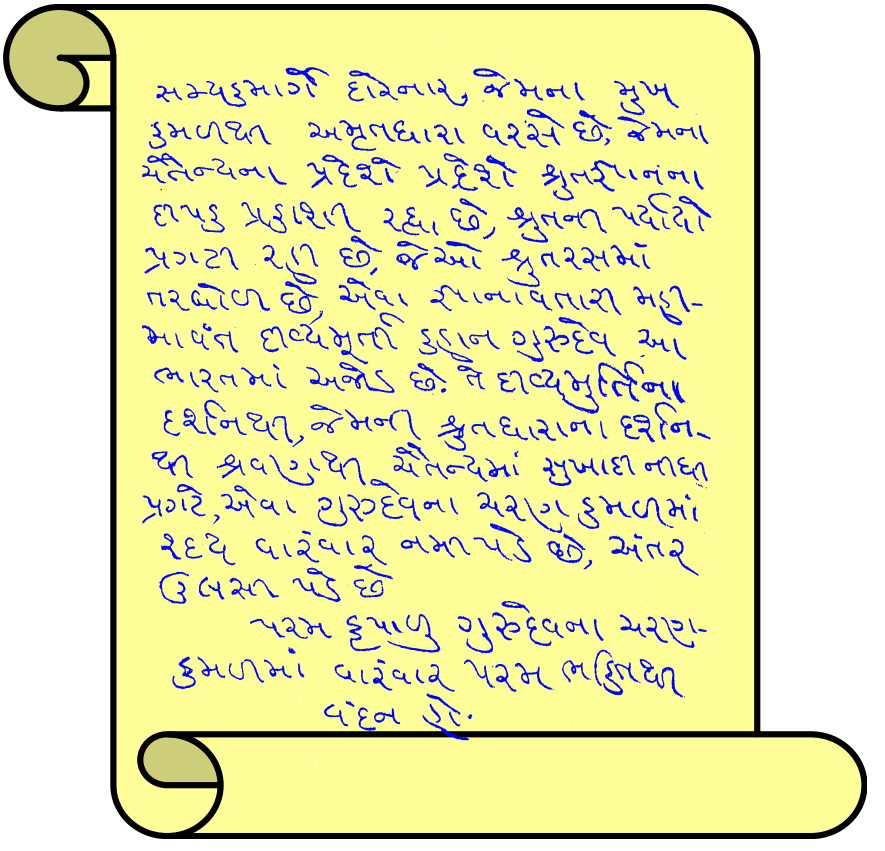

सम्यक्मार्गके पथप्रदर्शक, जिनके मुखकमलसे अमृतधारा बरसती है, जिनके प्रत्येक चैतन्यके प्रदेशसे, श्रुतज्ञानके दीपक प्रकाश रहे हैं, श्रुतकी पर्यायें प्रकट रही हैं, जो श्रुतरसमें तरबतर हैं, ऐसे ज्ञानावतारी महिमावंत दिव्यमूर्त्ति कहान गुरुदेव इस भारतमें अजोड़ हैं। उन दिव्यमूर्त्तिके दर्शनसे, उनकी श्रुतधाराके दर्शनसे, श्रवणसे, चैतन्यमें सुखादि निधि प्रकट हो। ऐसे गुरुदेवके चरणकमलमें हृदय बारम्बार झुक जाता है, अन्तर उल्लसित हो जाता है।

परमकृपालु गुरुदेवके चरणकमलमें बारंबार परम भक्तिसे वंदन हो।

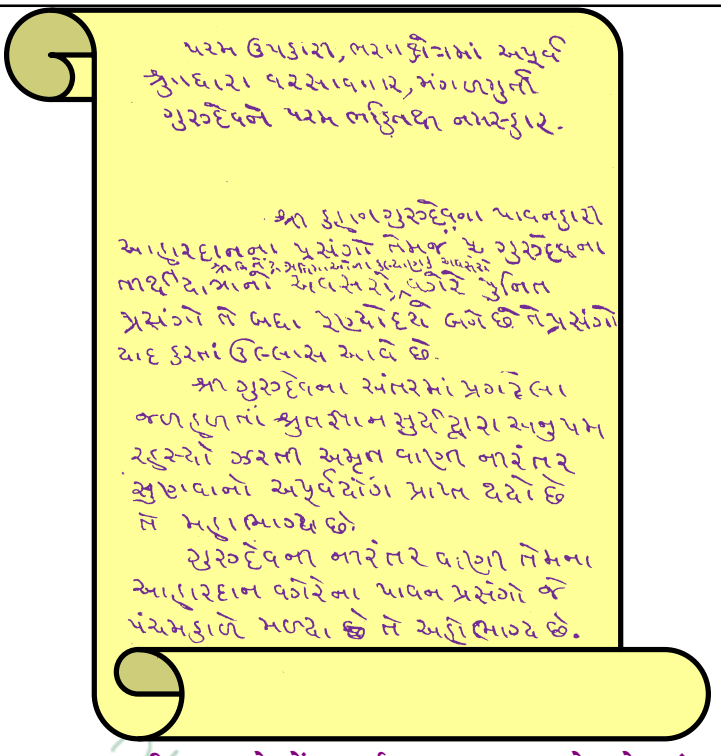

परम उपकारी, भरतक्षेत्रमें अपूर्व श्रुतधारा बरसानेवाले, मंगलमूर्ति गुरुदेवको परम भक्तिसे नमस्कार।

श्री कहानगुरुदेवके पावनकारी आहारदानके प्रसंग, एवं उस ही भांति पूज्य गुरुदेवके साथ तीर्थयात्राके अवसर, श्री जिनेन्द्र प्रतिमाओंके कल्याणक अवसर आदि पुनीत प्रसंग, वे सब पुण्योदयसे बनते हैं, उन प्रसंगोंको याद करते उल्लास आता है।

श्री गुरुदेवके अन्तरमें प्रकटे हुये, जाज्वल्यमान श्रुतज्ञानसूर्य द्वारा अनुपम रहस्य झरती अमृतवाणी निरंतर सुननेका अपूर्वयोग प्राप्त हुआ है, वह महाभाग्य है।

गुरुदेवकी निरन्तर वाणी, उनके आहारदान आदिके पावन प्रसंग जो पंचमकालमें मिले हैं वह अहोभाग्य है।

અનંતકાળના પરિભ્રમણનું દુઃખ
અને વિભાવનું દુઃખ સર્વ પરદ્રવ્ય
પરભાવો ને ભેદભાવોથી ન્યારા શુદ્ધાત્મ
તત્વને બતાવનારી ગુરુદેવની વાણીથી
સહજ ટળે છે.
પૂ. ગુરુદેવે શુદ્ધાત્મ તત્વને
પ્રગટ કરવાનો માર્ગ બતાવ્યો

પંચમકાળમા અનેક જીવોના દુઃખ
ટાળ્યા છે, સુખધામ, આનંદધામ
આત્માને પ્રગટ કરવાનો માર્ગ
સુગમ કર્યો છે.
પરમ પરમ ઉપકારી ગુરુદેવના
ચરણકમળોમાં પરમ ભક્તિથી
વારંવાર નમસ્કાર.

अनंतकालके परिभ्रमणका दुःख और विभावोंका दुःख, सर्व परभावोंके भेदभावोंसे भिन्न, शुद्धात्मतत्त्वको दिखानेवाली, गुरुदेवकी वाणीसे सहज टलता है।

पूज्य गुरुदेवने शुद्धात्म तत्त्वको प्रकट करनेका मार्ग बताकर, पंचमकालमें अनेक जीवोंके दुःख टाले हैं, सुखधाम, आनंदधाम, आत्माको प्रकट करनेका मार्ग सुगम किया है।

परम परम उपकारी गुरुदेवके चरणकमलोंमें परम भक्तिसे बारम्बार नमस्कार।

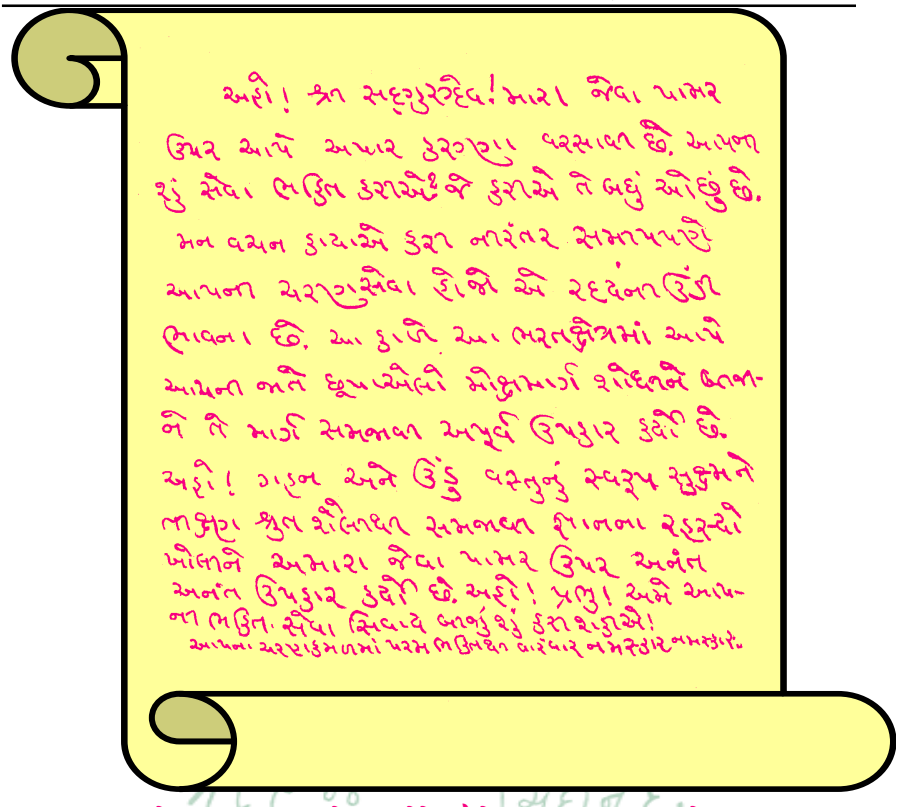

अहो! श्री सद्गुरुदेव! मेरे जैसे पामर पर आपने अपार करुणा बरसाई है। आपकी क्या सेवा-भक्ति करें? जो करें वह सब कम है। मन, वचन, काया द्वारा निरंतर समीपरूपसे आपकी चरणसेवा हो। यह ही हृदयकी गहरी भावना है। इस कालमें, इस भरतक्षेत्रमें छूपा हुआ मोक्षमार्ग आपने स्वयं ही ढूँढकर, अन्योंको वह मार्ग समझाकर अपूर्व उपकार किया है। अहो! गहन व गहरा वस्तुका स्वरूप, सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुत शैलीसे समझाकर, ज्ञानके रहस्योंको खोलकर, हमारे जैसे पामर पर अनंत अनंत उपकार किये हैं। अहो! प्रभु हम आपकी भक्ति-सेवाके अलावा अन्य क्या कर सकें! आपके चरणकमलोंमें परम भक्तिसे बारम्बार नमस्कार।

कल्याणकारी अमृतवचन

बहुत वर्ष पूर्व स्वानुभवपरिणत प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबेन द्वारा उनकी भाभी सुशीलाबेनको उद्‌बोधित अमृतवचन

(स्वहस्ताक्षरमें) हस्ताक्षर-5

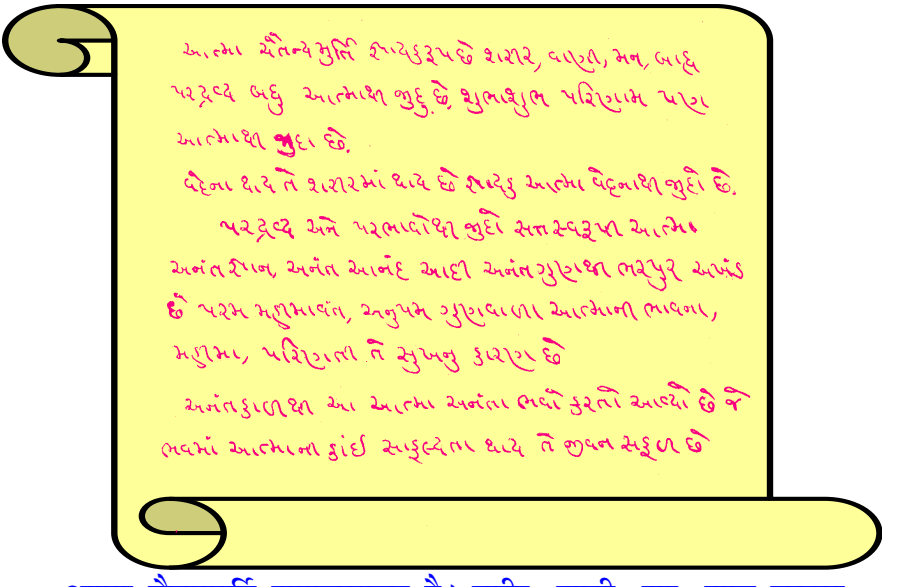

आत्मा चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वरूप है। शरीर, वाणी, मन, बाह्य परद्रव्य, सब आत्मासे भिन्न है। शुभाशुभ परिणाम भी आत्मासे भिन्न है।

वेदना होती है, वह शरीरमें होती है। ज्ञायक आत्मा वेदनासे अन्य है।

परद्रव्य और परभावोंसे भिन्न, सत्‌स्वरूपी आत्मा, अनंत ज्ञान, अनंत आनंद आदि अनंत गुणसे भरपूर अखंड है। परम महिमावंत अनुपम गुणवाले आत्माकी भावना, महिमा, परिणती, वह सुखका कारण है।

अनंतकालसे यह आत्मा अनंत भव करता आया है। जिस भवमें आत्माकी कुछ सफलता हो वह जीवन सफल है।

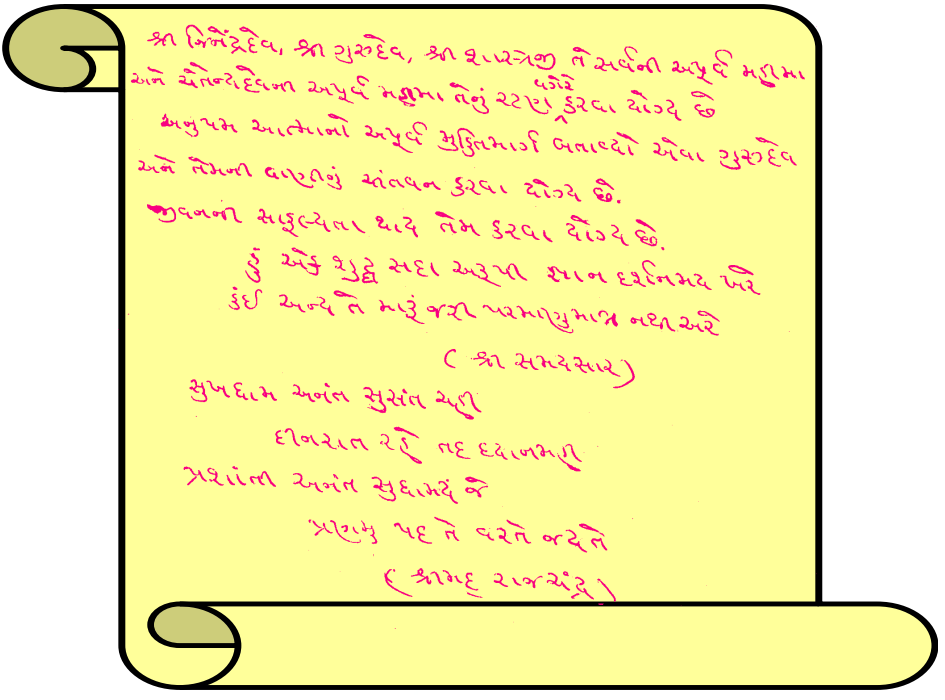

श्री जिनेन्द्रदेव, श्री गुरुदेव, श्री शास्त्रजी, उन सर्वकी अपूर्व महिमा और चैतन्यदेवकी अपूर्व महिमा, उनका रटन आदि करने योग्य है। अनुपम आत्माका अपूर्व मुक्तिमार्ग बताया, ऐसे गुरुदेव और उनकी वाणीका चिंतवन करना योग्य है।

जीवनकी सफलता हो वैसा करना योग्य है।

हुं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दर्शनमय खरे,
कंई अन्य ते मारुं जरी, परमाणुमात्र नथी अरे! (श्री समयसार)

सुखधाम अनंत सुसंत चहि,
दिनरात रहे तद् ध्यान मही,
प्रशांति अनंत सुधामय जे,
प्रणमुं पद ते वर्ते जयते। (श्रीमद् राजचन्द्र)

पत्रांक - ४४

वांकानेर,
वि.सं. १९९१,
चैत्र सु-६
(ई.स. १९३५, उम्र-२१ वर्ष)

.....।

हे श्री वीतराग! अब तो आपके चरणकमल सेवनकी बहुत भावना हो जाती है।

स्वरूपके अलावा कार्माण थैलीके निमित्तसे प्रकट होता समस्त शुभाशुभ परभाव, वह भाररूप व उपाधिरूप है। उसके प्रति कई बार सहजरूपसे विशेष उदासीनता आ जाती है, व उसकी थकान लगकर–उस प्रवृत्तिसे व उस परिणतिसे थकान लगकर चैतन्यप्रभु, उनसे विशेष उदास होकर स्वस्वरूपमें सहजरूपसे विशेष स्थित होते हैं।

अंतरंग स्थिति–ऐसी होनेपर कितनी बार बाह्य संग-प्रसंगके प्रति भी उदासीनता आ जाती है, व वे बाह्य संग-प्रसंग उपाधिरूप और भाररूप लगते हैं। उसमें भी अप्रशस्त परिचय विशेषरूपसे अरुचिकर लगते हैं; क्योंकि उनका अपनी आत्मस्थितिके साथ सुमेल नहीं है।

प्रशस्त परिचयमें कितने ही संग-प्रसंग प्रवृत्तिरूप लगनेसे, वे भी उपाधिरूप और भाररूप लगते हैं। अपूर्णताके कारण वैसे प्रसंगोंमें खड़ा रह जाता है, परंतु उपयोग वहाँसे पलट जाता है।

जिस समय असंगदशासे एकांतवासमें मुनिवर विचरते होंगे उस कालको धन्य है।

इस कालमें, इस क्षेत्रमें अपना जन्म, वह कई साधनोंकी दुर्लभता बताता है; फिर भी असीम उपकारी, अपूर्ववाणी प्रकाशक, अपूर्व ऐसे कहान गुरुदेव, इसकालमें मिले हैं, यह महाभाग्य है। उनके कारणसे आत्मसाधनाकी सुलभता है।

जब द्रव्य-क्षेत्र-काल स्वरूपसाधक आत्माओंका समागम होनेरूप परिणमित होगा, तब वह प्राप्ति होनेरूप योग बनेगा।

जहाँ पूर्णता नहीं, वहाँ देव, गुरु व उनकी वाणीकी ओर प्रशस्तभाव आए बिना नहीं रहता। यह ही।

लि.
श्री परम उपकारी गुरुदेवकी
तथा वीतराग देवकी
कल्पद्रुम समान छायाकी
इच्छुक

हे गुरुदेव ! आपसे दूर रहनेका विरह सहन नहीं होता ।

पत्रांक - ४५

सोनगढ़,
वि.सं. १९९२,
(ई.स. १९३६, उ. २२)
शनिवार, वैशाख–कृ. १२

.....।

जगदुद्धारक अद्भुत गुरुदेवको बारबार नमस्कार।

अभी मोक्षमार्ग प्रकाशक पढ़ रही हूँ; ठीक पढ़ा जाता है। दोपहरमें, पूज्य कृपालु गुरुदेवश्रीके प्रवचनमें, परमात्मप्रकाश पूरा हो गया है। अभी दो-तीन दिन श्रीमद्के पत्र पढ़े जायेंगे; पश्चात् राजकोटके प्रवचन पढ़े जायेंगे–ऐसा दिखाई देता है। गुरुदेवकी तबियत अच्छी है।

कल मेरा समय मुख्यरूपसे वांचन, विचार तथा स्वरूपस्थिरतामें गया था।

जड़ व चैतन्य दोनों, स्वभाव परिणामी द्रव्य, स्वतंत्र परिणमित होते रहते हैं।

लि.
आत्मस्वरूपकी पूर्णताका इच्छुक

पत्रांक - ४६

(सोनगढ़,
वि.सं. १९९२,
ई.स. १९३६, उम्र २२ वर्ष)

.....।

परम परम उपकारी गुरुदेवको नमस्कार।

....जो सर्व संयोगोंका साक्षी है उसे, ऐसे साधारण प्रसंग किस बिसातमें है? फिर भी साक्षीताकी पूर्णता नहीं होनेसे, अपूर्णता होनेसे, कभी-कभी विभावरूप राग-द्वेषकी परिणतिमें, उपाधिका बोझा लग जाता है।

लि.
—सर्वथा सर्वप्रकारसे तीव्रतासे निवृत्त
–स्वरूपकी इच्छुक
(सर्वथा सर्वप्रकारसे तीव्रतासे
समाधिस्वरूपकी इच्छुक)

पत्रांक - ४७

(वि.सं. १९९३
(ई.स. १९३६,
उम्र : २३ वर्ष)
कार्तिक शुक्ला,
मंगलवार, सोनगढ़

.....।

जगदुद्धारक श्री सद्गुरुदेवको नमस्कार।

परम पूज्य गुरुदेव सुखशांतिमें बिराजते हैं। गुरुदेवका स्वास्थ्य अच्छा है।

वांचन, विचार एवं स्वरूपस्थिति, अंतरंग आत्म-वीर्य जाग जाए, उस प्रकार हुआ करती है।

साधकोंकी दशा जगतसे निराली होती है। कभी-कभी स्वरूपमें सहजरूपसे–निर्विकल्परूपसे जम जाती है और कभी बाहर आती है, तब भी भेदज्ञानकी, ज्ञाताधाराकी, सहज समाधि परिणमती रहती है, स्वरूपमें लीनता होती है; तब आत्माके अचिंत्य, अनंत गुणपरिणमनके तरंगोंको अनुभव करते हैं। ऐसे होते-होते साधकधारा बढ़ते-बढ़ते मुनिपनेकी दशा प्रकट होते, मुनिपना आता है और क्रमशः श्रेणी आरोहण कर केवलज्ञान प्रकटाते हैं। स्वपरप्रकाशक स्वभाववाला ज्ञान पूर्णरूप परिणमता है। आनंद

आदि अनंतगुण पूर्णरूपसे परिणमते हैं। वह दशा धन्य है। बारबार धन्य है।

सुख और आनंद स्वरूपमें है, विभाव सब दुःखरूप और उपाधिरूप है।

दोपहरको गुरुदेवके प्रवचनमें, समयसार-नाटकमेंसे, अभी 'बंध-अधिकार' पढ़ा जा रहा है, ४२ पद तक पढ़ा गया है। यह ही।

श्री वीतराग आदि सत्पुरुषोंको नमस्कार

पत्रांक - ४८

(सोनगढ़,
वि.सं. १९९३,
ई.स. १९३६;
उम्र : २३ वर्ष)
कार्तिक, शुक्रवार,

.....।

चारों ओरसे सूक्ष्म और तीक्ष्ण श्रुतशैलीसे, दिव्य अमृत-प्रपात बरसानेवाले, अद्‌भुत गुरुदेवके चरणकमलमें नमस्कार हो।

परम पूज्य ज्ञाननिधि कृपालु साहेब सुखशांतिमें बिराजते हैं। स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवने समयसार अद्‌भुत और अपूर्व रीतिसे समझाया है। ऐसा हो जाता है कि, वाह! गुरुदेव वाह! मन-वचन-काया आपकी चरणसेवामें अर्पण करें तो भी कम है। ऐसी आज भावना हो जाती थी। अहा! समयसारमें कोई अद्‌भुत रहस्य भरा है। परंतु ज्ञान, क्रमपूर्वक एवं अधूरा होनेसे एक साथ पूरा व प्रकट उपयोगात्मकरूप, सभी रहस्य नहीं जान सकता। अतः ऐसी भावना हो जाती है कि, हे प्रभु! कोई ऐसी शक्ति या परिणमन प्रकट हो कि, जिससे सर्वांशरूप ज्ञानस्वरूप स्वयं ही, सहज ज्ञानरूप प्रकट उपयोगात्मकरूपसे पूर्णांश परिणमन हो जाए।

द्रव्यदृष्टिसे द्रव्य परिपूर्ण है; पर्यायमें अल्पता है।

पुरुषार्थ द्वारा चैतन्यका जो वीर्यगुण है, उसके द्वारा साधकपनेकी श्रेणी बढ़ती है और साध्य पूरा होता है। पर्यायकी पूर्ण निर्मलता होती है–वह भेद अपेक्षाकी बात है। अभेददृष्टिसे, अखंड गुणके पिंडस्वरूप स्वयं ही, परिणमन करके पूरा होता है। भेद-अभेद वस्तुस्वभाव अद्‌भुत है!

पूर्ण सहज स्थिति ही चाहिए।

लि.

गुरुदेवका चरणसेवक

पत्रांक - ४६

सोनगढ, वि.सं. १९९३
(ई.स. १९३७, उम्र : २३)
गु. पोष मास, बृहस्पतिवार

.....।

जीवनाधार, अजोड़-रत्न गुरुदेवके चरणकमलमें परमभक्ति-भावसह बारंबार नमस्कार।

परम-उपकारी कृपानिधि पूज्य गुरुसाहेब सुखशांतिमें बिराजते हैं। गुरुदेवके प्रवचनमें 'अनुभवप्रकाश' ग्रंथ पूरा हो जानेके पश्चात् 'श्रीमद् राजचंद्र' पढ़ेंगे। गुरुदेवका स्वास्थ्य अच्छा है।

विभावपरिणतिके प्रशस्त ओरकी प्रवृत्तियोगमें वांचन, विचारादिका प्रवर्तन है, अभ्यंतरमें–निवृत्तियोगमें–सर्व विभावसे भिन्न ऐसे निवृत्त स्वरूपमें, सहजस्वरूप परिणतिका प्रवर्तन है।

बाह्य संयोगोंकी, अस्थिर परिणतिमें असर, कुछ अंश स्थिति अनुसार होती है; ज्ञायककी प्रतीतिरूप भिन्न ज्ञायकपरिणतिमें, असर नहीं है, होनेयोग्य नहीं है। स्थिर परिणतिमें कुछ अंशमें स्वरूपसमाधि होने योग्य है, और वैसा ही है, यह ही–

लि.
आत्मस्वरूपके पूर्णताकी इच्छुक

पत्रांक - ५०

.....!

'पंचाध्यायी'के विषयमें क्या करना वह विचार चल रहा हैं। अनुभवप्रकाशके पूरे पुस्तकमें 'अनुभव ही' होने योग्य है। 'अनुभव' पढ़ते, सुनते, प्रशस्त उल्लास आ जाने योग्य है एवं आत्मपरिणतिको लाभ होने योग्य है। वह श्री गुरुदेवका परम प्रताप है। गुरुदेवकी वाणी अद्‌भुत, सूक्ष्म और गहन रहस्योंसे भरी है। गुरुदेव इस भरतखंडमें अद्वितीय रत्न प्रकटे हैं–जिनके दिव्य चैतन्य द्वारा और जिनकी दिव्य वाणी द्वारा, इस भरतक्षेत्रमें बहुत-बहुत जीवोंका उद्धार हुआ है। जिन्होंने, अपने तीव्र पुरुषार्थ द्वारा, अपूर्व तत्त्वको स्वयं प्रकट करके, हिंदुस्तानके निंद्राधीन जीवोंको जागृत किया है, हिंदुस्तानमें, छूपे हुए आत्मतत्त्वको स्वयं प्रकट करके, अगणित जीवोंका उद्धार किया है। ऐसे अपने गुरुदेवके चरणकमलमें बारंबार परम भक्तिसे नमस्कार, नमस्कार।

आंगनमें बिराजते ऐसे अपने गुरुदेवकी निकटतारूपसे, मन-वचन-काया द्वारा चरणसेवा निरंतर हो, निरंतर हो। चैतन्यस्वरूपकी वृद्धि करानेवाले, जीवनकी सफलता करानेवाले, परम उपकारी, प्यारे (वहाला) गुरुदेवकी बिलकुल समीपता हो, अब तो विरह सहन नहीं होता। महाभाग्यसे ऐसे गुणसमूह, ज्ञानमूर्ति, शांतिदाता गुरुदेव मिले हैं। धन्य है, इस क्षेत्रको, धन्य है, इस देशको।

लि. देव-गुरु-शास्त्रकी सेवा इच्छुक

पत्रांक - ५१

सोनगढ़, वि.सं. १९९४
(ई.स. १९३८)
माघ कृष्णा १२, सोमवार

.....।

अजोड़-रत्न गुरुदेवकी चरणसेवा, निरन्तर समीपरूपसे हो, यह ही भावना है।

परमोपकारी ज्ञानदाता पूज्य गुरुदेव सुखशांतिमें बिराजते हैं; स्वास्थ्य अच्छा है।

गुरुदेवके व्याख्यानमें 'अनुभवप्रकाश' ग्रन्थ पूरा हो गया है। दो दिनसे (व्याख्यानमें) 'श्रीमद् राजचंद्र'–वर्ष २५वाँ' चल रहा है। बहुत विस्तारपूर्वक व सरस पद्धतिसे पढ़ा जा रहा है। सुनते-सुनते उदासीनता हो जाती है, अभ्यंतर स्थिरता हो जाती है। वह श्री गुरुदेवका परम प्रताप है। गुरुदेवकी दिव्य वाणी, ऐसी अद्भुत व अपूर्व है कि, (हृदय) उल्लसित हो जाता है, प्रमुदित हो जाता है।

अन्य क्या लिखुं? लिखनेका कुछ विशेष याद नहीं आता। बार-बार पत्र लिखनेमें बहुत प्रवृत्ति लगती है।

प्रशस्त या अप्रशस्त सभी परिणति उपाधिस्वरूप है। सर्वके साक्षीरूप वेदनपरिणति, वह समाधिरूप है तथा स्वरूपस्थिरता वह समाधिरूप है।

प्रतीतिरूप, ऐसी ज्ञाताकी ज्ञातारूप वेदनपरिणतिमें स्थिरताको बढ़ाते-बढ़ाते, साधक साध्यरूपसे पूर्ण हो जाता है, पर्यायकी पूर्ण निर्मलता होती है। द्रव्य (सामान्य) तो अनादि-अनंत परिपूर्ण शुद्धतासे भरपूर है। शुद्धात्मामें स्वरूपरमणता बढ़ते-बढ़ते, आत्म-उपयोग परलक्ष्यसे सर्वथा छूटकर अपना कृतकृत्य स्वरूपको व्यक्त करता है, स्वरूपमें आकर, उसके साथ एकरूप होकर, सर्वांशसे जुड़ जाता है।

ऐसे अद्‌भुत स्वरूपको प्राप्त, ऐसे श्री वीतरागदेवको और उस वीतराग स्वरूपको बारम्बार नमस्कार हो।

लि. श्री गुरुदेवका चरणसेवक

पत्रांक - ५२

सोनगढ़
वि.सं. १९९३(ई.स. १९३७)
माघ मास, रविवार

.....!

अद्वितीय कृपालु गुरुदेवकी, मन-वचन-काया द्वारा, निरंतर समीपरूपसे चरणसेवा हो ऐसी भावना है।

परम-उपकारी श्री सद्‌गुरुदेव सुखशांतिमें बिराजते हैं; स्वास्थ्य अच्छा है।

स्वरूपपरिणतिमें यथाशक्ति स्वरूपस्थिति हुआ करती है। प्रशस्त योगमें वांचन, विचार, यथाशक्ति जिस प्रकार वीर्यपरिणति कार्य करे, वैसे हुआ करती है। ज्ञानपरिणतिमें कुछ नवीन-नवीन समझमें आता है, परंतु वह सब पत्रमें कैसे लिखा जाए ? साधारण लिखना हो तो, लिखा जा सकता है, परंतु लिखनेकी ओर लक्ष्य जाता नहीं है।

ज्ञानपर्याय संपूर्ण प्रकट होकर, पुरुषार्थ द्वारा अकेला स्व-आश्रयरूपसे एवं बिलकुल सहज परिणमित होगी तब धन्य होगी।

ज्ञायककी ज्ञातारूप 'अडोल' परिणति, बढ़ते-बढ़ते सर्वांशसे सूक्ष्म अडोलता प्राप्त होगी, वह दिन धन्य होगा।

अहा! धन्य है! उस संपूर्ण अड़ोल परिणतिको कि, जहाँ परका प्रभाव, सूक्ष्म भी सर्व प्रकारसे सहज छूटकर, अकेला साक्षीस्वभाव, वीतरागस्वभाव, अचिंत्य और अद्‌भुत ऐसा आत्मद्रव्य, अपने स्वभावोंको-तरंगोंको अनुभव कर रहा है, उसीमें परिणमित कर रहा है, कोई अद्‌भुततामें खेल रहा है!

पूज्य गुरुदेवके वांचनमें अभी भी 'श्रीमद्' ही पढ़ा जा रहा है। गुरुदेवके अपूर्व न्याय अन्य जातिके होते हैं।

आत्म-आधार पूज्य गुरुदेवके स्वास्थ्यमें, अब तो जरा भी कुछ न हो, बिलकुल ठीक रहे–ऐसी झंखना (भावना) है।

–श्री आत्मस्वरूपको नमस्कार

पत्रांक - ५३

वांकानेर
वि.सं. १९९३
(ई.स. १९३७)
(उम्र : २३)

.....!

परमपूज्य, परम-उपकारी, स्वरूपदाता कृपालु श्री सद्गुरुदेवको मेरे अत्यंत-अत्यंत भक्तिभावसे बारंबार वंदन–नमस्कार पहुँचे।

परम कृपालु गुरुराज सुखशांतिमें बिराजते होंगे। स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा होगा।

आत्मा और संसारका मेल नहीं है।

सोनगढ़के प्रति, उस पवित्रभूमिके प्रति बहुत महिमा आती है। अब तो विरह सहन नहीं होता। पूज्य गुरुदेव प्रतिका विरहकाल जल्दी पूरा हो, ऐसी भावना है।

लि.
श्री गुरुदेवका चरणसेवक

.....!

पत्रांक - ५४

वांकानेर
वि.सं. १९९६
(ई.स. १९४०)

परम कृपालु गुरुदेवको अत्यंत अत्यंत भक्तिसे बार-बार नमस्कार।

हम वहाँसे–कोठारियासे करीब ५ बजे निकले थे। वहाँसे राजकोट आकर, शामकी गाड़ीमें, यहाँ वांकानेर सुखशांतिसे पहुँच गए हैं। परम पूज्य कृपालुदेवके प्रवचनमें, करीब हजार-बारह सौ श्रोता थे। बगीचेमें–हरी झाड़ीमें–प्रवचन दिया था। वृक्षके नीचे बड़ा चबूतरा था; उस पर पाट (चौकी) थी। वहाँ बैठकर पूज्य गुरुदेव प्रवचन देते थे। चारों तरफ़ श्रोता बैठे थे। समवसरण जैसा लगता था। श्री पद्मनंदीमें 'श्रुत, परिचित, अनुभूत सर्वने' ऐसे आशयकी गाथा आती है, उस पर प्रवचन था। 'हुं कोण छुं?' 'क्यांथी थयो?' '(मैं कौन हूँ? कहाँसे हुआ?)' आदि आया था।

राजकोटमें नानालालभाईके 'आनंदकुंज'में पूज्य गुरुदेव बिराजते थे, तब आनंदमंगल हो रहे थे। पूज्य गुरुदेवका विहार होते 'आनन्दकुंज'का दृश्य सूना लगता था।

परम-उपकारी कृपालु साहेब आज तीसरे गाँव पहुँचे होंगे। विशेष पश्चात्।

–वीतरागदेवको नमस्कार

पत्रांक - ५५

सोनगढ़
वि.सं. २००३,
(ई.स. १९४७, उ.व. ३३)

.....।

अपूर्व मार्ग प्रकाशक, कृपालु गुरुदेवके चरणकमलमें परम भक्तिसह बारम्बार नमस्कार।

द्रव्यजीवन और भावजीवनके आधार, अपूर्व, सर्वस्व उपकारी, परम-कृपालु, अद्‌भुत गुरुदेव सुखशांतिमें बिराजते हैं। शारीरिक प्रकृति अच्छी है।

अब तो विभावके सभी विकल्पोंसे छूटकर, वीतराग-पर्यायरूप परिणमन होगा, तब धन्यता होगी! हजारों मुनियोंके वृन्द जिस कालमें विचरण करते होंगे, वह प्रसंग धन्य है! ऐसे कालमें मुनित्वको लेकर घड़ीमें (अल्प समयमें) अप्रमत्त, घड़ीमें (अल्प समयमें) प्रमत्त–ऐसी दशाको साधकर, वीतरागी पर्यायरूप परिणमेंगे, तब धन्य होंगे। अभी भी जैसे बने वैसे पुरुषार्थ बढ़ाकर, निर्मल पर्यायको विशेष–विशेष प्रकट करना, वही श्रेयरूप है।

लि.
निरंतर श्री देव-गुरु-शास्त्रकी सेवा इच्छनेवाली
बहिन चंपाके यथायोग्य.....
–श्री वीतरागभावको नमस्कार

विशेष - १०

बहिनश्रीके हृदयमें स्थित गुरुमहिमा

गुरुदेव पंचमकालमें भरतक्षेत्रमें पधारे, यह अपना महाभाग्य है। गुरुदेव भारतके तारणहार हैं। गुरुदेवने स्वानुभूतिका पंथ प्रकाशित किया है, मुक्तिमार्ग चारों पहलूसे स्पष्ट करके प्रकाशा है। गुरुदेवने भारतके जीवों पर अपूर्व उपकार किया है; मुक्तिके पंथकी ओर मोड़ा है।

गुरुदेव अनेक गुणोंसे भरपूर महिमावंत हैं। गुरुदेवके आत्मामें, आश्चर्यकारी श्रुतज्ञानके दीपक प्रकाश रहे हैं। गुरुदेवकी वाणी अनेक अतिशयतासे भरी चमत्कारी है, अन्तर आत्मामें अपूर्व श्रुतकी परिणति प्रकटानेवाली है। गुरुदेवकी आत्मस्पर्शी स्वानुभवरसझरती वाणी, स्वरूप-परिणति प्रकटानेवाली, भवसमुद्रको तिरानेवाली महिमावंत है।

गुरुदेव अनंत गुणोंसे शोभायमान दिव्य विभूति हैं। दिव्य उनका ज्ञान है, दिव्य उनकी वाणी है। गुरुदेवका आत्मद्रव्य अलौकिक है, महिमावंत है।

इस आत्मा पर–इस दास पर–गुरुदेवके अनेकविध अनंत अनंत उपकार हैं। गुरुदेवके गुणोंका, उनके उपकारोंका क्या वर्णन हो? उनके चरणोंमें बारम्बार परम भक्तिसे नमस्कार।

शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुए आपियो, वर्तुं चरणाधीन।

❀

द्रव्य सकळनी स्वतंत्रता जग मांही गजावनहारा,
वीरकथित स्वात्मानुभूतिनो पंथ प्रकाशनहारा;
–गुरुजी जन्म तमारो रे,
जगतने आनंद करनारो.

❀

स्वर्णपुरे धर्मायतनो सौ गुरुगुणकीर्तन गातां,
स्थळ-स्थळमां 'भगवान आत्म'ना भणकारा संभळाता;
–कण कण पुरुषारथ प्रेरे,
गुरुजी आतम अजवाळे.

(–बहिनश्री चंपाबेन)

❀

(१३५)

मंगलकारी 'तेज' दुलारी

(राग : निरखी निरखी मनहर मूरत)

मंगलकारी 'तेज'दुलारी पावन मंगल मंगल है;
मंगल तव चरणोंसे मंडित अवनी आज सुमंगल है,....मंगलकारी०

श्रावण दूज सुमंगल उत्तम, वीरपुरी अति मंगल है,
मंगल मातपिता, कुल मंगल, मंगल धाम रु आंगन है;
मंगल जन्ममहोत्सवका यह अवसर अनुपम मंगल है,....मंगलकारी०

मंगल शिशुलीला अति उज्ज्वल, मीठे बोल सुमंगल है,
शिशुवयका वैराग्य सुमंगल, आतम-मंथन मंगल है;
आतमलक्ष्य लगाकर पाया अनुभव श्रेष्ठ सुमंगल है,....मंगलकारी०

सागर सम गंभीर मति-श्रुत ज्ञान सुनिर्मल मंगल है,
समवसरणमें कुंदप्रभुका दर्शन मनहर मंगल है;
सीमंधर-गणधर-जिनधुनिका स्मरण मधुरतम मंगल है, ...मंगलकारी०

शशि-शीतल मुद्रा अति मंगल, निर्मल नैन सुमंगल है,
आसन-गमनादिक कुछ भी हो, शांत सुधीर सुमंगल है;
प्रवचन मंगल, भक्ति सुमंगल, ध्यानदशा अति मंगल है,....मंगलकारी०

दिनदिन वृद्धिमती निज परिणति वचनातीत सुमंगल है,
मंगलमूरति-मंगलपदमें मंगल-अर्थ सुवंदन है;
आशिष मंगल याचत बालक, मंगल अनुग्रहदृष्टि रहे,
तव गुणको आदर्श बनाकर हम सब मंगलमाल लहें.....मंगलकारी०

અનુભૂતિ તીર્થ મહાન, સ્વર્ણપુરી સોહે
યહ કહાનગુરુ વરદાન, મંગલ મુક્તિ મિલે.